दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध पत्रिका

A Review of rare buddhist texts

10

दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध योजना

केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान

सारनाथ, वाराणसी

1990

ह्रीः

दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध पत्रिका

10

सम्पादक

प्रो० एस. रिनपोछे
योजना निदेशक

प्रो० ब्रजवल्लभ द्विवेदी
उपनिदेशक

दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध योजना
केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान
सारनाथ, वाराणसी

बुद्धाब्द २५३४ | कार्तिक पूर्णिमा | ख्रीस्ताब्द १९९०

सहायक मण्डल

पं० जनार्दन पाण्डेय — डॉ० ठाकुरसेन नेगी

डॉ० बनारसीलाल — ठिनलेराम शाशनी

डॉ० टशी सम्फेल — पेन्पा दोर्जे

विजयराज वज्राचार्य

प्रथम संस्करण : ५५० प्रतियाँ

मूल्य : रु० ५५.००

प्रकाशक :
केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान
सारनाथ, वाराणसी

मुद्रक : रत्ना प्रिंटिंग वर्क्स, कमच्छा, वाराणसी

Dhīḥ

A Review of rare buddhist texts

10

Editor

PROF. SAMDHONG RINPOCHE
Project Director

PROF. VRAJVALLABH DWIVEDI
Deputy Director

भोटविद्या संस्थानम्

RARE BUDDHIST TEXT RESEARCH PROJECT

Central Institute of Higher Tibetan Studies

SARNATH, VARANASI

B. E. 2534 KĀRTIKA PŪRṆIMĀ C. E. 1990

Co-Editors

Pt. Janardan Pandey
Dr. Banarsi Lal
Dr. Tashi Samphel
Dr. Thakur Sain Negi
Thinlay Ram Shashni
Penpa Dorjee
Vijay Raj Vajracharya

First Edition : 550 Copies

Price : Rs. 55.00

Published by :
Central Institute of Higher Tibetan Studies
Sarnath, Varanasi

Printed by :
Ratna Printing Works, Kamaccha, Varanasi.

धीः

विषयानुक्रमणी

विनिष्टेन्द्रियवर्गो नष्टविकल्पोऽसमाप्तभवबीजः ।
आनन्दभासयाऽसौ गमनसमोऽप्यहह शीतलः स्वादुः ॥
—योगिनी चिन्ता

श्रीमन्महाबोधिवन्दनाष्टकम्

[ये दोनों स्तोत्र—महाबोधिवन्दनाष्टक और आदिबुद्धस्तोत्र—श्री जगन्नाथ उपाध्याय जी के व्यक्तिगत संग्रह से प्राप्त अप्रकाशित स्तोत्रसंग्रह से लिये गये हैं। इनका पत्राङ्क 7,10 तथा स्तोत्राङ्क 22,28 है।]

ॐ नमो बुद्धाय

सौवर्णवर्णं कलविङ्कघोषं ब्रह्मस्वरं कारुणिकं सुसेव्यम्।
नरोत्तमं शीलविशुद्धदेहं श्रीमन्महाबोधिमहं नमामि ॥ 1 ॥

शाक्येन्द्रवंशोद्भवदिव्यदेहं तृष्णाच्छिदं मारभिदं जिनेशम्।
ज्ञानास्पदं क्लेशभिदं विनेशं श्रीमन्महाबोधिमहं नमामि ॥ 2 ॥

समन्तभद्रं वरलक्षणाङ्गं सत्त्वार्थसिद्धिं सुकृतैः प्रणम्यम्।
श्रेयस्करं सत्त्वहितैकचित्तं श्रीमन्महाबोधिमहं नमामि ॥ 3 ॥

धर्मोदकं यः कृपयोत्ससर्ज रागाग्निसन्दीपितपुद्गलानाम्।
सुखाय संबोधिपयोमुचं तं श्रीमन्महाबोधिमहं नमामि ॥ 4 ॥

भवाब्धिनिस्तारणसेतुभूतं तथागतं तत्त्वविदं नृसिंहम्।
त्रैलोक्यनाथं वरबोधिरत्नं श्रीमन्महाबोधिमहं नमामि ॥ 5 ॥

पदार्थसम्पादनसुव्रतस्थं मायासुतं मारभिदं जितारिम्।
शास्तारमग्रं वरबोधिसत्त्वं श्रीमन्महाबोधिमहं नमामि ॥ 6 ॥

लोकेशनाथं हरिनाथनाथं भूतेशनाथं सुरनाथनाथम्।
कृतान्तनाथं नरनाथनाथं श्रीमन्महाबोधिमहं नमामि ॥ 7 ॥

स बुद्धरूपः स हि धर्मरूपः स एव संघोऽपि विनेयकानाम्।
अभूच्छरण्यः शरणागतानां श्रीमन्महाबोधिमहं नमामि ॥ 8 ॥

॥ इति श्रीमन्महाबोधिवन्दनाष्टकं समाप्तम् ॥

मञ्जुश्रीकृतमादिबुद्धस्तोत्रम्

श्रीस्वयंभुवे नमः

नमस्ते बुद्धरूपाय धर्मरूपाय ते नमः ।
नमस्ते संघरूपाय पञ्चबुद्धात्मने नमः ॥ 1 ॥

पृथ्वीरूपायाब्रूपाय तेजोरूपाय ते नमः ।
नमस्ते वायुरूपायाकाशरूपाय ते नमः ॥ 2 ॥

ब्रह्मणे सत्त्वरूपाय रजोरूपाय विष्णवे ।
तमोरूपमहेशाय ज्ञानरूपाय ते नमः ॥ 3 ॥

प्रज्ञोपायात्मरूपाय गुह्यरूपाय ते नमः ।
दिग्रूपलोकपालाय विश्वरूपाय ते नमः ॥ 4 ॥

चक्षूरूपाय कर्णाय घ्राणरूपाय जिह्वके ।
कायरूपाय श्रीधर्मरूपाय मनसे नमः ॥ 5 ॥

नमस्ते रूपरूपाय शब्दरूपाय ते नमः ।
रसगन्धस्वरूपाय स्पर्शरूपाय ते नमः ॥ 6 ॥

धर्मरूपधारकाय षडिन्द्रियात्मने नमः ।
मांसास्थिमेदोमज्जानां संघातरूपिणे नमः ॥ 7 ॥

रूपाय जगतानां ते स्थावराणां च मूर्तये ।
तिरश्चां मोहरूपाय रूपायाश्चर्यमूर्तये ॥ 8 ॥

जन्मरूपसृष्टिकर्त्रे कालरूपाय मृत्यवे ।
भव्याय वृद्धरूपाय बालाय ते नमो नमः ॥ 9 ॥

प्राणापानसमानोदानव्यानमूर्तये नमः ।
वर्णाय वर्णरूपाय भोक्त्रे स्वमूर्तये नमः ॥ 10 ॥

दिनरूपाय सूर्याय चन्द्राय रात्रिमूर्तये ।
तिथिरूपाय नक्षत्रयोगवारादिमूर्तये ॥ 11 ॥

बाह्याभ्यन्तररूपाय लौकिकाय नमो नमः ।
नैर्वाणाय नमस्तुभ्यं बहुरूपाय ते नमः ॥ 12 ॥

आदिबुद्धद्वादशकं पुण्यं प्रातः पठिष्यति ।
यदिच्छेत् तल्लभेन्नूनं मनुजो नित्यनिश्चयः ॥ 13 ॥

॥ इति आदिबुद्धद्वादशकं समाप्तम् ॥

दुर्लभ ग्रन्थ परिचय

—जनार्दन पाण्डेय—

['धीः' के इस अङ्क में निम्नलिखित 7 ग्रन्थों का परिचय दिया जा रहा है—

1. मन्त्रसमुच्चय
2. धारणीसंग्रहपुराणमहायानसूत्रराज
3. संशयपरिच्छेद
4. अमनसिकारक्रम
5. डाकार्णव
6. अध्यात्मसारशतक—प्रभाकर गुप्त
7. स्वाधिष्ठानप्रभेद—आर्यदेव

इनमें महत्ता और पाठकों के लिये उपयोगिता की दृष्टि से अमनसिकारक्रम का जितना अंश उपलब्ध था वह और स्वाधिष्ठानक्रमप्रभेद सम्पूर्ण दे दिया गया है ।]

1. मन्त्रसमुच्चयः

ग्रन्थ—मन्त्रसमुच्चय
संख्या—MBB–1971–89
पत्रसंख्या—28, पंक्ति प्र० प० 12, अक्षर प्र० पं० 52
आधार—नेपाली कागज, **लिपि**—नेवारी, **अपूर्ण** ।

प्रारम्भ

········नमस्त्रैयध्विकानां सर्वतथागतानाम् ॐ शुभविवरणवरदः चुरु2 मुलु2 सर्वतथागतधातुधर पद्मगर्भ परक्षेत्रस्वा····तथागतधर्मचक्रप्रवर्तन वज्रबोधिमन्त्रपः अलंकारः अलंकृतः सर्वतथागताधिष्ठितः बोधय2 बाधनि2····स्वस्ति भवन्तु सर्वावरणानि सर्वपापविगतः हुरु2 सर्वस्वकविगतः सर्वतथागत-हृदयवक्त्रिणि सम्भव2 तथागतगुह्यधातु····बुद्ध2 सुबुद्ध2 सर्वतथागत अधिष्ठित धातुगर्भ स्वाहा, ॐ सर्वतथागत अधिष्ठित स्वाहा सर्वतथागत हृदयधातु मुद्ध स्वाहा ।····यतिस्थित वक्रतथागताधिष्ठित स्वाहा हूं हूं फट् स्वाहा। सर्वतथागत उष्णीषधातुमुद्गीती सर्वतथागतधर्मधातुविभूषित अमृत2 हूँ2 स्वाहा ।

अन्त

ॐ नमो भगवते अतिबलमहारत्नपर्यङ्कानुरागाय तथागताय अर्हते सम्यक्संबुद्धाय प्रतिघात-सहाय पाशाङ्कुशलयाय पञ्चमहापापमोचन जहि। ॐनमो भगवते रत्नशरणधर्मपाणये तथागतायार्हते सम्यक्संबुद्धाय। थगुवासायापुण्यानेकप्रकारथगुवाताय....काय....सुश्रु....नमो भगवते प्रवरास्थिचय-हृसद्विनयसत्त्वसहस्रपारमितायार्हते सम्यक् सुश्रद्धाय थगु वातायाय नमः॥

पुष्पिका

नहीं है।

विवरण

इस ग्रन्थ की माइक्रोफिश प्लेट एडवांस स्टडी आफ वर्ल्ड रिलीजन्स, न्यूयार्क से शान्तरक्षित ग्रन्थालय में प्राप्त हुई है, जिसके आधार पर यह विवरण दिया गया है।

यह मन्त्रों का संग्रहमात्र है, जिसमें पत्र 1 से 19 तक 67 मन्त्र और 19 से 24 तक 51 मन्त्रों में मन्त्रसंख्या क्रम से दी गई है। 24 से 28 तक विना संख्या के 27 मन्त्र हैं। [कुल 145 मन्त्रों का संग्रह है। ये मन्त्र कहाँ से लिये गये हैं, कौन किस देवता का मन्त्र है और उसका विनियोग कहाँ कैसे होगा, ऐसा कोई संकेत नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि किसी विद्वान् ने अपनी स्मृति के लिये इनका संकलन किया है, इसलिये किसी प्रकरण या पुष्पिका का प्रश्न ही नहीं उठता। पत्र 3-4 और 28 से आगे नहीं हैं। पत्र 25 में "पञ्चविंशति वैरोचन या हृदय", "श्रीचक्रसंवर या हृदय", पत्र 27 में "शतसाहस्रिका प्रज्ञापारमिताधारणी समाप्त", पत्र 28 में "अष्टसाहस्रिकानाम हृदय समाप्त" तथा "प्रज्ञापारमिता हृदयधारणी समाप्त" ये वाक्य उन मन्त्रों के अन्त में लिखे हैं। केवल मन्त्र-ज्ञान के लिये ग्रन्थ उपयोगी है। बीच-बीच में मन्त्र-संगति बैठाने के लिये 'थगु' 'या' आदि नेवारी भाषा के शब्दों का भी प्रयोग किया है।

2. धारणीसंग्रहपुराणमहायानसूत्रराजः

ग्रन्थ—धारणीसंग्रह पुराणमहायानसूत्रराज

संख्या—MBB—II—171

पत्रसंख्या—1-282, **पंक्ति प्र० प०** 10, **अक्षर प्र० पं०** 44

आधार—नेपाली कागज, **लिपि**—नेवारी, **पूर्ण**।

प्रारम्भ

ॐ नमः श्रीवज्रसत्त्वाय । नमः श्रीरत्नगर्भाय ।
विहरति कनकाद्रौ शाक्यसिंहो मुनीन्द्रः
परिमितसुरसंघैः सेव्यमानो जनौघैः ।
कुवलयदलनेत्रो लक्षणैर्युक्तगात्रः
.........................सर्वलोके हितज्ञः ॥

ये देवाः सन्ति मेरौ वरकनकमये मण्डले ये च यक्षाः
पाताले ये भुजङ्गाः फणिमणिकिरणा ध्वस्तमोहान्धकाराः ।
कैलास्ये(से) श्रीविलास्ये(से) प्रमुदितहृदया ये च विद्याधरेन्द्रा-
स्ते मोक्षद्वारभूतं मुनिवरवचनं श्रोतुमायान्ति सर्वे ॥

अन्त

इदमवोचद् भगवानात्तमनास्ते च भिक्षवस्ते च बोधिसत्त्वाः सा च सर्वावती पर्षत् सदेव-मानुषासुरगरुडगन्धर्वाश्च लोका भगवतो भाषितमभ्यनन्दन्निति ।

पुष्पिका

इति श्री आर्यश्रीधारणीसंग्रहः पुराणमहायानसूत्रं रत्नचाक्रं परिसमाप्तः ।

विवरण

इस ग्रन्थ की माइक्रोफिश प्लेट एडवांस स्टडी आफ वर्ल्ड रिलीजन्स, न्यूयार्क से शान्तरक्षित ग्रन्थालय में प्राप्त हुई है, जिसके आधार पर यह विवरण दिया गया है।

इसमें प्रायः 108 धारणियों का संग्रह है। प्रत्येक धारणी की अवान्तर पुष्पिका भिन्न है। 'धीः' के द्वितीय अंक में जिन धारणियों का परिचय दिया जा चुका है, उनमें निम्नांकित 36 धारणियाँ नहीं हैं, जो इस ग्रन्थ में उपलब्ध हैं। शेष सभी उसमें आ चुकी हैं।

1. श्री योगाम्बरनाम धारणी
2. ,, चक्रसंवरनाम धारणी
3. ,, अपरिमितानाम धा०
4. ,, पर्णशबरीतारानाम धा०
5. ,, प्रतिसरायां विद्याधरनाम धा०
6. ,, सिंहनादलोकेश्वरनाम धा०
7. ,, अमोघपाशलोकेश्वरनाम धा०
8. ,, विजयवाहिनीनाम धा०
9. ,, अष्टमातृकानाम धा०
10. ,, शनिश्चरस्तवनाम धा०
11. श्री वसुन्धराया नन्दिमुखनाम धा०
12. ,, धर्मधातुवागीश्वरनाम धा०
13. ,, लोकेश्वरशतनामस्तोत्रनाम धा०
14. ,, खसर्पणानाम धा०
15. ,, दानपारमितानाम धा०
16. ,, शीलपारमितानाम धा०
17. ,, शान्तिपारमितानाम धा०
18. ,, वीर्यपारमितानाम धा०
19. ,, ध्यानपारमितानाम धा०
20. ,, प्रज्ञापारमितानाम धा०

21. षट्पारमितानाम धारिणी
22. आर्यषण्मुखनाम धा०
23. आर्यसत्याक्षरनाम धा०
24. लोकातीतस्तवनाम धा०
25. सुवर्णप्रभानाम धा०
26. वज्रवैरोचनीदेवी नाम धा०
27. विघ्नेश्वरनाम धा०
28. दशभूमीश्वरनाम धा०
29. ललितविस्तरनाम धारिणी
30. सपनेयविद्यानाम धा०
31. आर्यमेघसूत्रनाम धा०
32. चतुर्भुजमहाकालनाम धा०
33. षड्भुजमहाकालनाम धा०
34. षोडशभुजमहाकालनाम धा०
35. भृकुटीतारानाम धा०
36. गणेशषोडशनाम धारिणी

3. संशयपरिच्छेदः

ग्रन्थ—संशयपरिच्छेद

संख्या—3 363

पत्रसंख्या—36 (गणनया), **पंक्ति प्र० प०** 6 (प्रायः) **अक्षर प्र० पं०** 52

आधार—ताडपत्र, **लिपि**—प्राचीन नेवारी, **अपूर्ण** ।

प्रारम्भ (उपलब्ध पत्र से)

एवं मत्वा कल्याणमित्रविरहात् स्वचित्तस्य यथाभूतपरिज्ञानमनधिगम्य अहङ्कारममकारेण रिक्तं तुच्छं शून्यं शुभाशुभाधिकं कल्पेऽपि वाऽनादिसंसारे दुःखमनुभवन्ति । यथोक्तं भगवताऽऽर्याष्ट-साहस्रिकायां प्रज्ञापारमितायां कल्याणमित्रपरिवर्ते—"सुभूतिराह—यदि भगवन् सर्वधर्मा विविक्ताः, सर्वधर्माः शून्याः कथं भगवन् सर्वसत्त्वानां संक्लेशं प्रजायते, कथं भगवन् सर्वसत्त्वानां व्यवदानं प्रजायते, न च भगवन् सर्वसत्त्वानां विविक्तं संक्लिश्यते, न च भगवन् विविक्तं व्यवदायते, न च भगवन् शून्यं संक्लिश्यते । न च भगवन् शून्यं व्यवदायते । न च शून्यं वा विविक्तं वा, शून्यं वाऽनुत्तराम''''वापि गतिमदुच्यते'''"

अन्त

वज्रगुरुराह—

नापनेयमतः किञ्चित् प्रक्षेप्तव्यं न किञ्चन ।
द्रष्टव्यं तु ततो भूतं भूतदर्शी विमुच्यते ॥ इति ।

निष्पन्नक्रमस्यैतदधिवचनं यदुत भूतदर्शनमिति, भूतदर्शनाच्छाश्वतोच्छेदसंक्रान्तादिदृष्टयो निरुद्धयन्ति, तथापि व्यवहारमाश्रित्य संक्रान्तिविशुद्धिं नि''''

पुष्पिका

नहीं है।

विवरण

इस ग्रन्थ की माइक्रोफिल्म राष्ट्रीय अभिलेखागार, काठमाण्डू से शान्तरक्षित ग्रन्थालय में आई है, जिसके आधार पर यह विवरण दिया जा रहा है।

यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और उपयोगी ग्रन्थ प्रतीत होता है। इसमें वज्रशिष्य और वज्रगुरु के प्रश्नोत्तर के रूप में बौद्ध धर्म, दर्शन और साधना से सम्बद्ध सम्पूर्ण संशयों का उच्छेदन किया गया है। छोटे-छोटे व्यावहारिक विषयों से लेकर बड़े-बड़े गूढ़ रहस्यों तक की शंकाओं का समाधान है। दुर्भाग्य से ग्रन्थ अपूर्ण है। पंचम परिच्छेद के कुछ अंश से ग्यारहवें परिच्छेद के कुछ अंश तक ही उपलब्ध है। पूर्ण ग्रन्थ के कहीं होने की सूचना अभी तक किसी ग्रन्थसूची से हमें नहीं प्राप्त हुई। पञ्चम से दशम परिच्छेद तक की अवान्तर पुष्पिकाएँ इस प्रकार हैं—

कर्मान्तविभागमेलावणसंशयपरिच्छेदः पञ्चमः।

संवृतिसत्यमेलावणसंशयपरिच्छेदः षष्ठः।

परमार्थसत्यमेलावणसंशयपरिच्छेदः सप्तमः।

अप्रतिष्ठितनिर्वाणधातुमेलावणपरिच्छेदोऽष्टमः।

श्रीसर्वबुद्धसमायोगडाकिनीजालसंवरन्यायेन बोधिसत्त्वचरितधर्मोदयाभिसम्बोधि-प्रपञ्चतामेलावणपरिच्छेदो नवमः।

निष्प्रपञ्चतया मेलावणपरिच्छेदो दशमः।

इस प्रकार इस उपलब्ध अंश में कर्मान्तविभाग, संवृतिसत्य, परमार्थसत्य, अप्रतिष्ठितनिर्वाण-धातु, धर्मोदयाभिसम्बोधि और निष्प्रपञ्चता विषयक ही प्रश्नोत्तर हैं। ग्रन्थ की प्रश्नोत्तरशैली बड़ी रोचक है। शिष्य लम्बे-लम्बे प्रश्न करता है और गुरु अत्यन्त संक्षेप में सम्पूर्ण प्रश्न का समाधान कर देते हैं। उदाहरण के लिये षष्ठ परिच्छेद का प्रथम प्रश्न और उसका उत्तर इस प्रकार है—

वज्रशिष्य उवाच—युष्मत्पादप्रसादादनन्तरोक्तप्रवचनानुसारेण कायवाक्चित्तस्य स्वलक्षणे प्रविचार्यमाणे यदवधीरितं समाप्त्यनन्तरं तद्भट्टारकपादौ निवेद्योत्तरं समाधिविशेषं परिपृच्छामि उत्पत्तिक्रमादारभ्य कायविवेकस्य पर्यन्तं त्रिवज्रविनाभावलक्षणा विमुक्तिमात्रतः कायविवेकदेवतारूपं न विद्यते, परमाणुसमूहत्वात् कायस्य। वाग्विवेकस्यापि पर्यन्तं प्रवेशादिक्रमेण वज्रजपमात्रापरिज्ञानं तत्रापि देवताकारो न विद्यते, प्रति···पमस्वभावत्वाच्छब्दस्य। चित्तविवेकस्यापि पर्यन्तं प्रकृत्याभास-परिज्ञानमात्रम्। तत्रापि सर्वाकारवरोपेतादिलक्षणान्वितदेवतास्वरूपं नोपलभ्यते, आभासमात्रत्वा-च्चित्तस्य। अनेन द्योत्येन संवृतिसत्यमाश्रित्ये(ते)न विना प्रतिष्ठानं लभते। तस्माज्ज्ञानमात्रेण देवता-निष्पत्तिं गुरुप्रसादादवगन्तुमिच्छामि।

वज्रगुरुराह—साधु साधु महासत्त्व ! अचिन्त्यं तु देवतातत्त्वं सर्वबुद्धोपदेशं गुरुपर्वक्रमागतं दशभूमीश्वराणामप्यगोचरं ते प्रतिपादयिष्यामि । स्वचित्तस्य यथाभूतपरिज्ञानं मनोगे स्कन्धे वाऽन्वायतनादीनामभावे तु त्रयप्रकृत्याभासमात्रेण सर्वलक्षणोपेतदेवतारूपग्रहणम् । तच्च स्वप्नमायादिद्वादशदृष्टान्तैरुपलक्षितमयं बुद्धानाममनोमयकायः ।

ग्रन्थ का जितना अंश उपलब्ध है, उसमें प्रायः गुह्यसिद्धि और गुह्यसमाज के वचन उद्धृत हैं और वैरोचनाभिसम्बोधितन्त्र, समाधिराजसूत्र, मूलसूत्र, परमाद्यमहायोगतन्त्र, डाकिनीजालसंवर तथा कम्बलाचार्यपाद के वचन भी प्रमाणरूप में दिये गये हैं। ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी है।

4. अमनसिकारक्रमः

ग्रन्थ—अमनसिकारक्रम

संख्या—MBB—II—144

पत्रसंख्या— 5, **पंक्ति प्र० प०** 12, **अक्षर प्र० पं०** 54

आधार—ताड़पत्र, **लिपि**—नेवारी (प्राचीन), **पूर्ण** ।

विवरण

यह ग्रन्थ एडवांस स्टडीज आफ वर्ल्ड रिलीजन्स, न्यूयार्क से माइक्रोफिश प्लेट के रूप में शान्तरक्षित ग्रन्थालय में आया है। उसी के आधार पर यह विवरण दिया जा रहा है। इसमें—

इति बुद्धबोधिसत्त्वसिद्धानामाम्नायः ।

अमनसिकारयथाश्रुतक्रमः समाप्तः ।

सम्प्रदायविधिः ।

भगवतीसंहार्येत्याम्नायः ।

ये चार अवान्तर पुष्पिकाएँ हैं। इसके प्रत्येक प्रकरण में जो सिद्धपराम्पराक्रम दिया है और नागार्जुन एवं अद्वयवज्र के संबन्ध में जो विवरण दिया है, वह अनुसन्धित्सुओं के लिये उपयोगी हो सकता है, इसलिये इस लघु ग्रन्थ से केवल प्रारम्भ और अन्त की सामग्री न देकर ग्रन्थ का उपलब्ध पूरा अंश ही हम यहाँ दे रहे हैं। न्यू कैटलागस् कैटलागरम् भाग 1, पृष्ठ 316 में सूचित किया गया है कि 'अमनसिकाराम्नाय' नाम से इस ग्रन्थ को प्रो० जी० टुची ने 1930 ई० में जर्नल आफ एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल के पेज नं० 148-155 में प्रकाशित किया है।

नमो मञ्जुवज्राय ।

मञ्जुवज्रं प्रणम्यादौ नाथपादमनन्तरम् ।
अमनसिकाराम्नायं वक्ष्यते सुमहोदयम् ॥

संबुद्धा बोधिसत्त्वाश्च सिद्धास्तैरनुशासिताः ।
अभिषिक्तास्तथेत्येषामाम्नायक्रम इष्यते ॥

तत्रादौ धर्मचक्रेऽस्मिन् श्रावकैः परिवारितः ।
उपतस्थे स भगवान् दिशन् पारमितादिकम् ॥

ततस्तान् स परित्यज्य गतवान् दक्षिणापथे ।
निर्माय धर्मधात्वाख्यं मण्डलं सुमनोरमम् ॥

नायकः स्वयमेवात्र बोधिसत्त्वाश्च षोडश ।
नायकाश्चाभवन्नष्टौ तथाष्टावुपनायकाः ॥

नामतश्च निगद्यन्ते क्रमतो मण्डलस्थिताः ।
मण्डलं तु गुरूद्दिष्टं नैतदाम्नायसंगतम् ॥

मैत्रेयः क्षितिगर्भश्च वज्रपाणिः खगर्भकः ।
लोकेश्वरश्च मञ्जुश्रीः सर्वनिर्वरणस्तथा ॥

समन्तभद्रश्चन्द्राभः सूर्याभोऽमलकीर्तिना ।
विमलप्रभस्तथा धर्मोद्गतो रत्नमतिस्तथा ॥

व्योमगञ्जश्च सुधनो मण्डलस्था यथाक्रमम् ।
अभिषेकं ततस्तेषां दत्त्वा पारमितादिकम् ॥

समर्प्य शाक्यसिंहेन व्याकृतः शासनेऽमुना ।
आर्यनागार्जुन इति भविष्यति महामतिः ॥

प्रकर्तव्यमनेनापि धर्मचक्रप्रवर्तनम् ।
दक्षिणापथदेशेऽस्मिन् पत्तने करहाटके ॥

ब्राह्मणस्य कुले जन्म पिता चास्य त्रिविक्रमः ।
माता सावितृ(त्री)नाम्न्यस्य व्याकृतादपरं मतम् ॥

दामोदरेति विख्यातो भिक्षुत्वे शाक्यमित्रकम् ।
नामापरं रत्नमतिरनुग्रहविधौ स्थितः ॥

आह्लाऽद्वयवज्रेति वज्रयोगिन्यधिष्ठितः ।
सरहः सिद्धिभाक् तेन तदनुग्राहको भवेत् ॥

अस्यैवानुग्रहात् पूर्वं तेन(ना)कारि च नाम तत् ।
ततः श्रुतं हयग्रीवं पश्चाच्च दर्शनम् ॥

रत्नमतिना च समं वरेन्द्रयां प्रस्थितः पुनः ।
लेखयित्वा प्रतिष्ठेदं बोधिसत्त्वस्य धीमतः ॥

पूजां प्रतिदिनं तस्य कृत्वा नागार्जुनोऽवसत् ।
ग्रामे देघ(व)पुराख्ये तु प्रक्रान्तः सुसमाहितः ॥

लोको नाम नटस्तस्य गौरी च सहचारिणी ।
तयोः पुत्रस्त्रिशरण आर्यमध्येस(ष)ते परम् ॥

रत्नमतिं दर्शयति स तमाह न पश्यसि ।
ज्ञानक्षणेन विकलः कथं त्वं पश्यसि क्षणात् ॥

तं प्रत्याह त्रिशरणस्त्वं मेऽनुग्रहं कुरु ।
यथा पश्यामि तं नाथं ज्ञानचक्षुरतीन्द्रियः ॥

आर्यनागार्जुनानुज्ञां प्राप्य सिद्धस्तदाभवत् ।
बोधिसत्त्वेन च ततोऽनुगृहीतो यथार्थतः ॥

मनोभङ्गचित्तविश्रान्ती चर्यास्थानं विवेचितम् ।
आकृतिं सव(शब)रस्यासौ दधन् हि वसति स्म सः ॥

॥ इति बुद्धबोधिसत्त्वसिद्धानामाम्नायः समाप्तः ॥

इन्द्रभूतिपा । उड्डिनी । वज्रयोगिनी । मिलापा । नारोपा । अद्वयवज्रपा । ध्यायीपा । महापण्डितामोघश्रीः । अथवा सव(शब)रनाथ । अद्वयवज्र । बज्रपाणि । पैण्डपातिक । पण्डिताभयाकरगुप्त । पुनरद्वयवज्रस्येति । वः करुणा उपायचक्रम् । जः शून्यता । तयोरेकं रेफः । वाक्पथातीतवाकारो राकाराकारवर्जितः । हेत्वनुपलब्धि हीकारो वाराही वज्रपूर्विका ॥ इति परमार्थविशुद्धिः । कायवाक्चित्तविशुद्धया त्रि(गु?)कोणं हेतुफलयोरभेदत्वात् त्रिकोणं तुल्यता धर्मोदयेति ॥

नमः श्रीवज्रयोगिन्यै । प्रथमं बाह्यपूजा सिन्दूरेण । असम्भवे मन्त्रेण । स्वहृदि सूर्यस्थहूंकाररश्मिभिराकृष्य प्रवेश्य पुष्पादिभिः संपूज्य तदनन्तरं जगच्छून्यीकृत्य शून्यतानन्तरं झटित्यात्मानं भगवतीं भावयेत् । पर्वतशिरोपरि नानापुष्पोपेतां सूर्यस्थहूँकाररश्मि संस्मार्य श्वासवातो यथा···· गः । अमृतास्वादनं वशीकरणे पर्वतादिकं पारदसदृशं भावयन् वामनासापुटेन पिबेत् । त्रिकालं वलिसाधना च कर्तव्या । यथाऽऽदित्यो बालतरुणाद्यनपेक्ष्य स्वकिरणैः पर्वतमाक्रामति तथा भगवतीपर्वताक्रान्तं भावयेत् । अमृतमास्वादयेत् । शिष्यानुग्रहे जिह्वायां मन्त्रमभिलिख्य स्वहृद्रश्मिनादं प्रवेश्य आवेशयेत् । वज्रयोगिनी गुरुपरम्परा । शबरनाथ, सागरदत्त, विजयमोघ, अनङ्गवज्र, वसो, पिण्डपातिक, पण्डितविनयगुप्त, महापण्डितवागीश्वर, अवधूतसुधनश्री, लीलावज्र, ललितवज्र, कोविदारपण्डितपादाः ।

नमः श्री स(श)बरेश्वराय। इह खलु मध्यदेशे पञ्चकपिलवस्तुमहानगरसमीपे झाडकरणी नाम पल्लिकाऽस्ति। तस्मिन् स्थाने ब्राह्मणजातिर्नानूको नाम ब्राह्मणी च सावित्री नाम प्रतिवसति स्म। तदा च कालान्तरेण दामोदरो नाम तत्पुत्रो बभूव। स चैकादशवर्षदेशीयः कुमारः सामार्द्धवेदको गृहान्निष्क्रम्य मर्तु(मृत्यु)बोधो नामैकदण्डोऽभूत्। ततः पश्चाल्लीकटीसत्त्रे पाणिनिव्याकरणं श्रुत्वा सप्तवर्षपर्यन्तं सर्वशास्त्रमधिगम्य विंशतिवर्षपर्यन्तं नारोपादसमीपे प्रमाणमाध्यमिकपारमितानयादिशास्त्रं श्रुतम्। तदनु मन्त्रनयशास्त्रज्ञेन रागवज्रेण सहाऽवस्थितः पञ्चवर्षपर्यन्तम्। पश्चान्महापण्डितरत्नाकरशान्तिगुरुभट्टारकपादानां पार्श्वे....कारव्यवस्थां श्रुत्वा वर्षमेकं यावत्। पश्चाद् विक्रमशीलं गत्वा महापण्डितज्ञानश्रीमित्रपादानां पार्श्वे तत्प्रकरणं श्रुतं वर्षद्वयं यावत्। ततो विक्रमपुरे गत्वा संमतीयनिकाये मैत्रीगुप्तो नाम भिक्षुर्बभूव। सूत्राभिधर्मविनयं च श्रुत्वा वर्षचतुष्टयं यावत् पञ्चक्रमताराम्नायेन मन्त्रजपं कृत्वा कोटिमेकं चतुर्मुद्रार्थसहितेन भट्टारकेण स्वप्ने गदितं गच्छ त्वं खसर्पणम्। तत्र विहारं परित्यज्य खसर्पणं गत्वा वर्षमेकं यावन्निषीदति। पुनरपि स्वप्ने गदितं गच्छ त्वं कुलपुत्र दक्षिणापथे मनभङ्गचित्तविश्रामौ पर्वतौ तत्र स(श)बरेश्वरस्तिष्ठति, स च तवानुग्राहको भविष्यतीति। तत्र च मार्गे सागरनामा मिलिष्यति, स च चीनदेशवासिराजपुत्रस्तेनापि सार्धं गच्छ, पश्चाद् गते सति सागरेण मिलितम्। उड्रदेशपर्यन्तेन मनभङ्गचित्तविश्रामयोर्वार्तां न श्रुतवान्। श्रीधान्यं गत्वा वर्षमेकं स्थितवान्, पश्चाद्बाहुल्येन तत्र देशे साधिष्ठानतारां साधयितुमारब्धवान्। मासैकेन स्वप्नोऽभूत्। गच्छ त्वं कुलपुत्र वायव्यां दिशि पर्वतौ तिष्ठन्तौ पञ्चदशदिनेन प्राप्तव्यौ। भट्टारिकाया वाक्येन वायव्यां दिशं संघातैः सार्धं गच्छति प्राप्तिपर्यन्तं पुरुषेणैकेनोक्तं परमदिने मनभङ्गचित्तविश्रामौ प्राप्येते लग्नौ। तत्र सुखेन वस्तव्यम्। इति श्रुत्वा पण्डितपादो हृष्टोऽभूत्। अपरदिनं प्राप्तम्। तत्र पर्वते दिने दिने दश दश मण्डलानि कृतवान्। कन्दमूलफलाहारं कृत्वा दिनदशपर्यन्तं शिलातले पर्यङ्कमारुह्य एकाग्रचित्तेन उपवासं कर्तुमारब्धः। सप्तमे दिवसे स्वप्नदर्शनं भवति। दशमे दिवसे ग्रीवां छेत्तुमारब्धः। तत्क्षणात् साक्षाद्दर्शनं भवति सेकं ददाति। अद्वयवज्रनामाऽभूत्, पञ्चक्रमचतुर्मुद्रादिव्याख्यानं कृतं द्वादशदिनपर्यन्तम्। पुनरप्युपदेशेन पञ्चदिनं यावत् सर्वधर्मदृष्टान्तेन वीणां वादयति। तत्र पद्मावली ज्ञानावली। स(श)बरेश्वरेण आज्ञां दत्त्वा प्राणातिपातादिमायां दर्शय त्वम्। तदनन्तरं सागरः कायव्यूहं वर्धयते। पण्डितपादेनोक्तः—भगवन् किमप्यहं कायव्यूहं निर्मायितुमशक्तः? स(श)बरेश्वर आह—विकल्पसंभूतत्वात्। पण्डित आह—तर्हि किं कर्तव्यं मम ज्ञापयन्तु पादाः? स(श)बराधिप आह—तवेह जन्मनि सिद्धिर्नास्ति देशनाप्रकाशनाः कुरु। अद्वयवज्र आह—अशक्तोऽहं भगवन् कर्तुं कथं करिष्यामि। आह—इह वज्रयोगिन्युपदेशात् करिष्यसि त्वम्, फलं च फलिष्यतीति। इहोपदेशमुक्त्वा भट्टारकपादो ऽन्तर्धानोऽभूत्।

नेदं धनुर्न च मृगा न वराहपोतः सम्पूर्णचन्द्रवदना न च सुन्दरोयम् ।
निर्माणनिर्मिततयाऽर्थिजनस्य हन्त संतिष्ठते गिरितले स(श)बराधिराजः ॥

॥ अमनसिकारयथाश्रुतक्रमः समाप्तः ॥

नमः सर्वज्ञाय । पूर्ववदकारादिचक्रं संपूज्य विहितभगवतीयोगः प्रणवपीठादागतवदनः काण्डपीठाद् बहिर्गत्वा कृतपञ्चमण्डलोदग्दक्षिणः प्रणवपीठागतवदन उपायचक्रं लिखित्वा प्रवेश्य नाथाङ्कितशिरस्कः स्वहृदि चक्रं संस्फार्य वक्त्रेण वक्त्रं दत्त्वा तद्धृदि ध्यानं मुखमापूर्य वज्रभूतोऽष्टोत्तरशतमन्त्रितं कृत्वा "मुहे मुहं दइ मेल" तत उपायचक्रमिति भ्रमन्तं विचिन्त्य मन्त्रितपुष्पताडनं डमरुं घण्टां वा संवाद्य साटोपं मन्त्रमुच्चारयन् धूपं दद्याद् । यदि तस्य प्रकम्पादिनिमित्तमुपार्जयेत्तदैव कथनीयं नैवान्यथा, तदनु चक्रादुद्धृत्य मन्त्रदाने गुरुपरम्पराकथनं कर्तव्यमिति सम्प्रदायविधिः ॥ एतदभिसन्धाय गुरुपर्वक्रमाम्नायसम्प्रदायैकगोचरमिति । तत्कथा च कथितव्या श्रद्धोत्पादनार्थम् । शिष्यज्ञानाकृष्टिरभिधीयते । इह जन्मनि यदि न सिद्ध्यति तदा मरणसमये चक्रं तन्मुखात् स्वमुखे प्रविश्य स्वस्थान एव लीन इति लूयीपादोपदेशात् संवरार्णवतन्त्रमानेतुमोडियानं गतस्तत्र योगिनीपार्श्वे दिनचतुष्टयं यावत् स्थितश्चौर्येण तत्तन्त्रमानीतं नदीपारे तया दृष्टम् एतत्साधनं सर्वमपि वायुना नीतं वज्राङ्गनासकाशे । कुकुरीपादैः श्रुतमिन्द्रभूतिपादैर्लक्ष्मींकराविरुवापादैः पैण्डपातिकडिङ्गरपैण्डपातिकाः ।

नमः श्रीवज्रयोगिन्यै । प्रथमं यथासंभवं पूजोपकरणं कुर्यात् । अग्रे वलिं स्थाप्य वामे मद्यपात्रं पञ्चपीयूषसंयुक्तम् । वामकरे चन्द्रो दक्षिणकरे सूर्यः । हृद्रश्मिनादेन नासापुटेन निश्चार्य करे विलीय करशोधनम्, तत्करे मद्यपात्रं पिधाय मन्त्रस्नानं पूजाद्रव्यं च प्रोक्षयेत् । मण्डलीकरणके त्रिकोणाकारेण मध्ये वं । उपरि यथाविधिगोपितदिव्योदकसमायुक्तसिन्दूरपूजा, अभावे पुष्पादिभिर्बीजपूजा । तदनन्तरं त्रिविशुद्धिमनुस्मरेत् । आत्मानं त्रैधातुकविशुद्धिकूटागारं विचिन्तयेत् । झटिति नाभिमण्डले भगवतीं भावयेत् । मुद्राद्वययोगजो वाग्जपः, तदनन्तरमग्रे निश्चार्य पूजास्तुतिरमृतास्वादनम् । सार्वभौतिकदिक्पालेभ्यः शेषामृतढौकम् । इति भगवतीसंहार्येत्याम्नायः ॥

5. डाकार्णवः

ग्रन्थ—डाकार्णव

संख्या—4-8

पत्रसंख्या—158, **पंक्ति** प्र० प०—12, **अक्षर** प्र० पं०—62,

आधार—नेपाली कागज, **लिपि**—नेवारी, **पूर्ण** ।

प्रारम्भ

ॐ नमः श्रीसर्ववीरवीरेश्वरीभ्यः ।

एवं मया श्रुतमेकस्मिन् समये भगवान् महावीरेश्वरः सर्वतथागतवीरकायवाक्चित्तवज्रयोगिनीभगेषु क्रीडितवान् । तत्र महावीरेश्वर उवाच—

इन्द्रजालं मया दृष्टं महासुखसमाधिना ।
संसारव्यवहारे न निर्वाणं प्रतिपद्यते ॥

तत्र मध्ये महाबिम्बं महं विन्दति इन्द्रियान् ।
वीरांश्च स्वस्वभावेषु शृण्वन्तु ज्ञानसागरान् ॥

योगिनीचक्रमध्ये तु पृच्छाम्यहं वाराहिका ।
इन्द्रजालं किमाख्यातं मया तु कोऽत्र संज्ञकः ॥

दृष्टं वाव महा चैव सुखं भुक्तं किमेतत् ।
समाधिर्नाम किं तत्र कृतं ते भुवनेष्वपि ॥

अन्त

इदमवोचद् भगवानात्तमनाः

अनन्तापर्यन्ताश्चैव कलिकाले भुवान्तरे ।
शाक्यसिंहेन तन्त्रं च कथितो योगपारगम् ॥

श्रोतारं स्वयमे शास्ता वक्तारं च परे जने ।
सुभाषितं भाष्यमानं तन्मयं च गतिर्भवेत् ॥

मयाभिस्मा गतिं प्राप्तं संगीतिकारकादिभिः ।
संगीतिवज्रपीठेषु स.........................तिः ॥

अर्धे सनार्धे सनश्च कृत्वा परस्परं मतम् ।
भगवतो भाषितं च अभ्यनन्दमिदं वचः ॥

मुक्ता गच्छन्ति पापैस्तु भवस्यासयमानताः ।
इत्याह भगवान् स्वामी वज्रडाकस्तथागतः ॥

सर्ववीरसमायोगाद् वज्रसत्त्वः परं सुखम् ।

पुष्पिका

इति श्रीडाकार्णवमहायोगिनीतन्त्रराजे योगज्ञानसंवरक्रियातत्त्वार्णवासीतडाकार्णवादिमं नाम तुल्यं तन्त्रराजं समाप्तः ॥

अतिरिक्त

ये धर्मा हेतुप्रभवा हेतुं तेषां तथागतो ह्यवदत् ।
तेषां च यो निरोधो ह्येवंवादी महाश्रमण: ॥
योऽसौ धर्मः सुगतगदितः पठ्यते भक्तिभावाद्
मात्राहीनः कथमपि पदं पादगाथाक्षरं वा ।
जिह्वादोषः पवनचरितैः श्लेष्मदोषः प्रचारे
यूयं बुद्धाः स्वभवनगता बोधिसत्त्वाः क्षमध्वम् ॥

श्रेयोऽस्तु संवत् 983 मिति पौषशुक्लपूर्णिमा पर प्रतिपदा सोमवारदिने लिखितं सम्पूर्णमिति ।

विवरण

इस ग्रन्थ की माइक्रोफिल्म राष्ट्रीय अभिलेखालय, काठमाण्डू से शान्तरक्षित ग्रन्थालय में प्राप्त हुई है, जिसके आधार पर यह विवरण दिया जा रहा है।

यह ग्रन्थ कई दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है—

1. यह स्वतन्त्ररूप से मूल तन्त्र है, इसमें किसी दूसरे ग्रन्थ से उद्धरण नहीं लिये गये हैं और इसको प्राय: सभी प्राचीन ग्रन्थकारों ने उद्धृत किया है ।

2. कारिडर के सूचीपत्र से ज्ञात होता है कि इस ग्रन्थ के आधार पर महापण्डित जयसेन ने निम्नलिखित 4 ग्रन्थों की रचना की है—

1—डाकार्णवतन्त्र मण्डलचक्रसाधन—रत्नपद्मरागनिधि
2—डाकार्णवतन्त्र होमविधि—रत्नसूर्यकान्त
3—डाकार्णवतन्त्र अभिषेकविधि—रत्नगर्भकोश
4—डाकार्णवतन्त्र बलिविधि—रत्नाश्मगर्भ

3. कारिडर कैटलाग से ही यह भी ज्ञात होता है कि श्रीपद्मवज्र ने इस पर वोहित्थ नामक टीका लिखी है ।

4. यद्यपि मूल ग्रन्थ संस्कृत में है, किन्तु इसके बीच-बीच में पर्याप्त मात्रा में अपभ्रंश के अंश आये हैं। इन अंशों को एकत्र कर उनकी व्याकरण दृष्टि से शुद्धि, संस्कृत छाया, तिब्बती पाठ के साथ तुलना तथा पाठान्तर आदि द्वारा अत्यन्त श्रमसाध्य सम्पादन करके 'डाकार्णव' नाम से श्री नगेन्द्रनारायण चौधरी ने 1935 ई० में कलकत्ता से प्रकाशित कराया था । इससे पूर्व इसके कुछ अंशों का परिचय म० म० हरप्रसाद शास्त्री जी अपने "हजार वचनेर पुराण बांगला भाषाय बौद्ध गान ओ दोहा" में दे चुके थे । उक्त दोनों विद्वानों का अभिमत है कि इसमें आये हुए अपभ्रंश अंश

प्राचीन बंगला भाषा के हैं, जो भाषावैज्ञानिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। इसलिये यह अपभ्रंश के, विशेषतः शौरसेनी प्राकृत के अध्येताओं के लिये अत्यन्त उपयोगी ग्रन्थ है।

5. एस० बी० दास गुप्ता ने अपने "एन इंट्रोडक्सन टू तान्त्रिक बुद्धिज्म" की बिब्लियोग्राफी में डाकार्णव शास्त्री एडिसन और चौधरी एडिसन कह कर अलग-अलग उद्धरण दिये हैं, इससे ऐसा लगता है म० म० हरप्रसाद शास्त्री जी ने इस ग्रन्थ का सम्पादन व प्रकाशन किया था। एशियाटिक सोसाइटी कैटलाग भाग 1 (बुद्धिस्ट पाम लीव) पृष्ठ 91 में शास्त्री जी ने लिखा है— इसके 3 पटल मैंने प्रकाशित करा दिये हैं, किन्तु यह संस्करण हमें देखने को नहीं मिला।

6. श्री चौधरी ने जिस पाण्डुलिपि को आधार माना है और जिनसे पाठभेद दिये हैं, उनसे यह पाण्डुलिपि, जिसका ऊपर विवरण दिया गया है, भिन्न है, क्योंकि इसके पाठों में उनसे बहुत अन्तर है।

विषयनिर्देश

इस ग्रन्थ में 51 पटल हैं। प्रत्येक पटल की पुष्पिका से उसमें प्रतिपादित विषय ज्ञात हो जाता है, अवान्तर पुष्पिकाएँ इस प्रकार हैं—

इस ग्रन्थ के 49वें पटल में निम्नलिखित 25 प्रकरण हैं—

इति प्रकरणं नवमः [मातृग्रहकठपूतनादियोगसाधनम्] पृ० 141

इति प्रकरणं दशमः [वज्रजटिलोद्भवयोगसाधनम्] पृ० 142

इति प्रकरणमेकादशमः [सिद्धौषधिस्वभावकवंशाकारसमायोगादमृतविरूपणम्] पृ० 143

इति प्रकरणं द्वादशमः [ज्ञानसहजोपदेशः] पृ० 144

इति प्रकरणं त्रयोदशमः [ज्ञानचर्याव्रतधारणस्येन्द्रियग्रामसौख्यम्] पृ० 144

इति प्रकरणं चतुर्दशमः [सत्त्वबोधिरूपमहात्मनां भावकारणकस्थितिः] पृ० 145

इति प्रकरणं पञ्चदशमः [गुह्ययोगसाधनम्] पृ० 147

इति प्रकरणं षोडशमः [सहजचक्षुर्वर्णकयोगसाधनम्] पृ० 148

इति प्रकरणं सप्तदशमः [ज्ञानाद्वैतप्रकरणम्] पृ० 148

इति प्रकरणमष्टादशमः [रत्नवज्रप्रयोगसाधनम्] पृ० 149

इति प्रकरणमेकोनविंशतिमः [हयग्रीवप्रयोगसाधनम्] पृ० 150

इति प्रकरणं विंशतिमः [प्रभञ्जनप्रयोगसाधनम्] पृ० 151

इति प्रकरणमेकविंशतिमः [स्वयंवेद्यलक्षणयोगप्रकरणम्] पृ० 152

इति प्रकरणं द्वाविंशतिमः [पद्मनर्तेश्वरयोगसाधनम्] पृ० 152

इति प्रकरणं त्रयोविंशतिमः [वैरोचनयोगसाधनम्] पृ० 153

इति प्रकरणं सर्वपीठात्मकं चतुर्विंशतिमः [वज्रसत्त्वयोगसाधनम्] पृ० 154

इति प्रकरणं पञ्चविंशतिमः [सर्वरहस्यस्थानकवज्रसत्त्वयोगसाधनम्] पृ० 155

चतुर्थ से 25 वें प्रकरण तक पुष्पिका में केवल प्रकरण का ही उल्लेख किया है, उसमें प्रतिपादित विषय का नहीं, अतः प्रत्येक प्रकरण में जो विषय आया है, उसे हमने [ ] कोष्ठ के अन्दर दे दिया है।

6. अध्यात्मसारशतकम्

ग्रन्थ—अध्यात्मसारशतक (सटीक)
ग्रन्थकार—प्रभाकर गुप्त, (टीकाकार—शिरोमणि ?)
संख्या—22859 (फोटो प्रति)
पत्र सं०—40, **पंक्ति प्र० पृ०** 14, **अक्षर प्र० पं०** 42
आधार—नेपाली कागज, **लिपि**—देवनागरी, अपूर्ण।

प्रारम्भ

नमः श्रीवज्रसत्त्वाय।
नत्वा देवीमसमसुखदामुग्रतारामजस्र-
मासंसारं सुगदचरणं धर्मयुक्तं ससंघम्।
शश्वत्पादारविन्दे गुरुमपि च तथाऽध्यात्मसारस्य चार्थं
वक्ष्ये संक्षेपतोऽद्य प्रवरगुणगणं शिष्यवाञ्छानुरोधात्॥

यथा वाञ्छा च बन्धूनां हृत्कीर्तिरूपराजयोः ।
तथोवाच यथाशक्त्या त्वालापोऽर्थशिरोमणिः ॥ (टीका)
एकानेकव्युपरतिसुखैः सिद्धचारैरनेकैः
क्षित्यादीनां न मिलति यतो वस्तुसिद्धिः कुहापि ।
विज्ञानान्तं तदिह सकलं निःस्वभावं समन्ता–
न्नैवाकस्मात् स्फुरति नियमाद् देशकालाकृतीनाम् ॥ 1 ॥ (मूल)

अन्त

गुह्याद् गुह्यं कथितमभितोऽध्यात्मसारं यदेतत्
सिद्धाम्नायं झटिति फलदं चाभिषिक्ताय देयम् ।
निर्गर्वाय स्वतनुधनभार्यादिसर्वस्वहात्रे
संविग्नाय स्वपरमरणादर्थिने साधकाय ॥ 100 ॥

अध्यात्मसारसर्वस्वमिदं विधाय
श्रीमान् प्रभाकरबुधः कृपयाऽवधूतः ।
यल्लब्धवानभिमतं कुशलं विशालं
तेनाविनष्टवपुषा सुखितोऽस्तु लोकः ॥ 101 ॥

अध्यात्मसारसर्वस्वशतके ये विपश्चितः ।
तेषां चरणपद्मानि सेवध्वं हे मुमुक्षवः ॥ 102 ॥

पुष्पिका

अध्यात्मसारशतकं समाप्तमिति ।
॥ कृतिरियं प्रभाकरगुप्तपादानाम् ॥

विवरण

इस ग्रन्थ की मूलकापी की, जो नेवारी लिपि में ताड़पत्र पर है, तथा उसी की प्रतिलिपि जो देवनागरी में की गई है, दोनों की जोराक्स कापी राष्ट्रीय अभिलेखालय काठमांडू से शान्तरक्षित ग्रन्थालय में आई हैं, देवनागरी वाली प्रतिलिपि से यह विवरण दिया जा रहा है। ये दोनों प्रतियाँ अपूर्ण हैं। इनमें मूल के श्लोक 74 तक और टीका 72 तक ही उपलब्ध है। बीच में भी मूल व टीका 47 तथा 63 वें श्लोक की नहीं है। नेवारी वाली प्रति में अपाठ्य होने से देवनागरी में भी वह अंश छूट गया है। जापान से आये हुए प्रकीर्ण पत्रों में खोजने पर मुझे इसके 82 से अन्त तक के मूल श्लोक उपलब्ध हुए हैं। ऊपर जो अन्त का अंश उद्धृत है, वह नेवारी लिपि में उन्हीं प्रकीर्ण पत्रों से लिया गया है। फिर भी 8 श्लोकों के बिना यह ग्रन्थ अपूर्ण ही रह जाता है।

यह ग्रन्थ यद्यपि योगक्रिया से संबन्ध रखता है, जैसा कि ग्रन्थकार ने 9वें श्लोक में स्पष्ट कहा है—

गत्यागत्यादिकमिह यथा वस्त्वभावेऽपि मोहा-
न्मायास्वप्नप्रतिममपरं जन्म चास्ते तथैव।
तन्मिथ्यादृक्पतितवचनात् संशयं चाप्यपास्य
प्राज्ञैर्योगाभ्यसनविधिना जन्मनाशो विधेयः॥

तथापि जन्ममरण से छुटकारा पाने के लिये दार्शनिक सिद्धान्तों के साथ समन्वय करते हुए श्वासप्रक्रिया पर नियन्त्रण इसका उद्देश्य है। ग्रन्थ अपने में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

7. स्वाधिष्ठानप्रभेदः

ग्रन्थ—स्वाधिष्ठानप्रभेद

ग्रन्थकार—आर्यदेव

विशेष—इस ग्रन्थ का संक्षिप्त विवरण हम 'धीः' के अंक 4, पृष्ठ 22 पर दे चुके हैं, किन्तु कई विद्वानों ने इसकी महत्ता और दुर्लभता को देखते हुए इसे संपूर्ण ही 'धीः' में प्रकाशित कराने का आग्रह किया है, अतः यह पूर्ण ग्रन्थ यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है—

ज्ञानमूर्ति नमस्कृत्य सर्वदृष्टिविदारकम्।
स्वाधिष्ठानप्रभेदोऽयं वक्ष्यते कृपया मया॥ 1॥

अस्तीति कल्पना यावत् तावच्छाश्वतकल्पना।
शाश्वताभिनिवेशोऽयं नेदं मायास्वलक्षणम्॥ 2॥

नास्तीति कल्पना यावत् तावदुच्छेदकल्पना।
उच्छेदाभिनिवेशोऽयं नेदं मायास्वलक्षणम्॥ 3॥

अस्तिनास्तित्वनिर्मुक्ता मध्यमा या तु कल्पना।
मध्यमाभिनिवेशोऽयं नेदं मायास्वलक्षणम्॥ 4॥

यत् सत्यं संवृतिः प्रोक्तं बुद्धानां कायलक्षणम्।
सेयं माया समुद्दिष्टा स्वाधिष्ठानमिहोच्यते॥ 5॥

येन व्याप्तमिदं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम्।
यो नाप्यतेऽल्पपुण्यैस्तु व्याकृते(तै)रेव लभ्यते॥ 6॥

नात्र शौचं न नियमो न तपो न च दुष्करम्।
अदुष्करैरनियमैः सुखैर्हसै(र्षै)श्च सिद्ध्यति॥ 7॥

एवं विज्ञाय तत्त्वज्ञो यं स्मरेच्च मुहुर्मुहुः ।
सिद्धयते तस्य बुद्धत्वं सर्वं मायाविकुर्वितैः ॥ 8 ॥
मायास्थं च सदा देवाः पालयन्तीह योगिनः ।
सर्वज्ञेयं भवत्येव मायोपमसमाधिना ॥ 9 ॥
वज्रायुधं महावीर्यं सर्वमारोग्यसत्सुखम् ।
बुद्ध-ऋद्धिं च संप्राप्य यात्युत्पतति स्वेच्छया ॥ 10 ॥
वशमायान्ति सत्त्वाश्च दर्शनेनैव चोदिताः ।
लभते वाञ्छितं सर्वं मायोपमसमाधिना ॥ 11 ॥
स्वप्नमायोपमान् धर्मान् बौद्धाः सर्वे वदन्त्यपि ।
सत्यं ते न प्रजानन्ति स्वाधिष्ठानबहिर्मुखाः ॥ 12 ॥
वायुविज्ञानसंयुक्तं छायाकार(रं) मनोमयम् ।
स्वज्ञानं ते न पश्यन्ति [माया]दृष्टान्तमोहिताः ॥ 13 ॥
अनन्तेष्वपि कल्पेषु श्रुतिपारङ्गतैरपि ।
गुरुवक्त्राद् विना माया साक्षात्कर्तुं न शक्यते ॥ 14 ॥
तस्मान्मानं परित्यज्य बुद्धत्वफलकाङ्क्षया ।
वज्रयानं समारुह्य यत्नेनाराधयेद् गुरुम् ॥ 15 ॥
इदानीं च प्रवक्ष्यामि क्रमभेदं सुदुर्लभम् ।
यं ज्ञात्वा विचरेद् योगी सर्वबुद्धमयो भवेत् ॥ 16 ॥
पृथिव्यादीनि चत्वारि तथा शून्यचतुष्टयम् ।
.... विनाशोत्पत्तिहेतवः ॥ 17 ॥

[1]प्रभास्वरान्महाशून्यं तस्माच्चोपायसंभवः ।
तस्मादुत्पद्यते प्रज्ञा तस्याः पवनसंभवः ॥ 18 ॥
पवनादग्निसंभूतिरग्ने[श्च] जलसंभवः ।
जलाच्च जायते पृथ्वी सत्त्वानामेष संभवः ॥ 19 ॥
भूधातुर्लीयते तोये तोयस्तेजसि लीयते ।
तेजश्च सूक्ष्मधातौ च वायुश्चित्ते विलीयते ॥ 20 ॥
चित्तश्चैतसिके लीये[ता]विद्यायां तु चे(चै)तसम् ।
सोऽ(सा)पि प्रभास्वरं गच्छेन्निरोधोऽयं भवत्रये ॥ 21 ॥

1. यहाँ से चार श्लोक (18-21) सेकोद्देशटीका (पृ० 51-52) में आर्यदेवपाद और आर्यपाद के नाम से उद्धृत हैं ।

अनादिकालिकं ह्येवं भवचक्रं प्रवर्तते ।
यावन्न पश्यत्यात्मानं मायोपमसमाधिना ॥ 22 ॥

स्वसंवेद्यो(द्या) हि सा माया तार्किकाणामगोचरा ।
निजदेहस्थितौ चापि मन्दपुण्यो(ण्यैः) न लभ्यते ॥ 23 ॥

ज्ञायते परमेकेन स्वदेहे साऽविकारिणी ।
गुरुपादप्रसादेन दृष्टान्तैरुपलक्षिता ॥ 24 ॥

निधयो मणयश्चापि पृथिव्यामुदकं यथा ।
विद्यमाना न दृश्यन्ते तथा देहेषु सर्ववित् ॥ 25 ॥

मायामरीचिर्गन्धर्वनगरः शक्रकार्मुकम् ।
दर्पणः(ण) प्रतिबिम्बश्चोदकचन्द्र[ः] प्रतिध्वनिः ॥ 26 ॥

स्वप्नमायाभूपटलं विद्युद्बुद्बुदसंज्ञिता ।
माया द्वादशदृष्टान्तैर्विस्तरा चैकलक्षणा ॥ 27 ॥

आसां विस्पष्टतारूपं यद्देवतालम्बनं प्रति ।
मायात्रयं समुद्दिष्टं यत्नतस्तत्प्रकीर्त्यते ॥ 28 ॥

दर्पणप्रतिबिम्बं च शक्रचापमथापरम् ।
तृतीयं जलचन्द्रं च मूर्तिमेतैर्विभावयेद् ॥ 29 ॥

सूतके यत्समुद्दिष्टं यच्च बुद्धकुलं महत् ।
तत्तत्कुलसमुद्भूता देवताश्च पृथग्विधाः ॥ 30 ॥

दूतदूत्यस्तथा क्रोधाश्चेटचेट्यश्च किङ्कराः ।
न ते सन्ति न भाः(ताः) सन्ति सत्त्वार्थं प्रति दर्शिताः ॥ 31 ॥

एतत्सर्वं हरेद् योग(गी) संहरेदपि चात्मना ।
मायोपमसमाधिस्थो मण्डलाद्यपि विस्तरम् ॥ 32 ॥
वर्णान् नानाविधांश्चापि स्वाधिष्ठानेन योजयेत् ।
शोकं भयं विरागं च सन्त्रासं स्खलितं तथा ॥ 33 ॥
दुष्टं च दौर्मनस्यं च दुर्दृष्टं दुष्कृतं तथा ।
दुर्गन्धं दूरसं चापि दुःस्पर्शं चैव यद् भवेत् ।
तास्ता विरूपाः प्रकृतां(तीः) स्वाधिष्ठानेन शोधयेत् ॥ 34 ॥
विण्मूत्रादिप्रवृत्तिश्च ज्वराद्या व्याधयश्च ये ।
स्वाभाविका जराद्याश्च तेषां माया चिकित्सितम् ॥ 35 ॥

येन धर्मेण बालानां संसारो भुवि वर्धते ।
[1] योगिनस्तेन धर्मेण संसारो न विवर्धते ।। 36 ।।
सुखाः कामगुणाः पञ्च बालानां बन्धने मताः ।
योगिनस्तेन धर्मेण बुद्धत्वं साधयेत् पुनः ।। 37 ।।
रागो हर्षस्तथा प्रीतिर्मैत्री च करुणा तथा ।
उपेक्षा मुदिता चैव बलमुत्साह एव च ।। 38 ।।
शौर्यं वीर्यं तथा रौद्रं हठत्वं साहसं तथा ।
स्वरूपाः प्रकृतीश्चान्याः स्वाधिष्ठानेन संच(ह)रेत् ।। 39 ।।
एकमुद्रासमायुक्तश्चतुर्मुद्रायुतोऽथवा ।
अन्तःपुरगतो वापि स्वाधिष्ठानमनुस्मरेत् ।। 40 ।।
रूपं शब्दं तथा गन्धं रसं स्पर्शं च शोभनम् ।
अनुभूयात् सदा योगी महासुखपदे स्थितः ।। 41 ।।
ततं चैवावनद्धं च घण्टं शुषिरमेव च ।
वाद्यं चतुर्विधं योगी स्वाधिष्ठानेन निर्विशेत् ।। 42 ।।
शृङ्गारादीन् रसान् सर्वान् नवनाटकसंज्ञकान् ।
अनुभूयात् सदा योगी मायोपमसमाधिना ।। 43 ।।
योगतन्त्रे समुद्दिष्टाश्छोमाद्या ये च विस्तराः ।
तांश्च प्रवर्तयेद् योगी माययाऽनुपलम्भतः ।। 44 ।।
उन्मिषन् निमिषन् वापि हसन् जल्पंस्तथैव च ।
गच्छंस्तिष्ठन् स्वपन् भुञ्जन् मायादेहमनुस्मरेत् ।। 45 ।।
जगत्यन्याश्च याः क्रीडा नानासङ्कल्पकल्पिताः ।
विचरेत् ताश्च तत्त्वज्ञो महारागनये स्थितः ।। 46 ।।
स्वाधिष्ठानमिदं प्राप्य सर्वदृष्टिविदारणम् ।
सर्वं कुर्यान्न कुर्याद् वा यथारुचितचेष्टितः ।। 47 ।।
चैत्य कर्म न कुर्वीत न च पुस्तकवाचनम् ।
करोतु वाचयेच्चापि स्वाधिष्ठानक्रमेण तु ।। 48 ।।
देवान् न वन्दयेदेवं भिक्षूंश्चापि न वन्दयेत् ।
अथवा वन्दयेत् सर्वान् स्वाधिष्ठानक्रमेण तु ।। 49 ।।

---

1. "योगिनः''''कर्म शुभानि यद्वत्" (श्लो० 36-55) ये सभी श्लोक गुह्यादि-अष्टसिद्धिसंग्रह में प्रकाशित अन्तिम सिद्धि (पृ० 212-213) में मुद्रित हैं ।

मन्त्रन्यासं न कुर्वीत मुद्राबन्धं तथैव च ।
मन्त्रजापं न कुर्याद्वा कुर्याच्च प्रतिबिम्बवत् ॥ 50 ॥

मदीयं दृश्यते चित्तं बाह्यमर्थं न विद्यते ।
एवं वै भावयेन्मायां तथतामप्यनुस्मरेत् ॥ 51 ॥

अनन्तध्यानविधिना मन्त्रमूर्तिसमाधिना ।
यदि माया न लब्धा स्यात् सर्वभूमिफलाय वै ॥ 52 ॥

देहभोगप्रतिष्ठा च भूमिपारमितादयः ।
बुद्धऋद्धिविकुर्वादि सर्वं मायाविचेष्टितम् ॥ 53 ॥

आदर्शबिम्बे सकलं स(सु)युक्तं रूपं यथा स्वच्छतरं विभाति ।
अशीत्यनुव्यञ्जनलक्षणाढ्यो देहस्तथा वज्रधरः सदैव ॥ 54 ॥

[1]इन्द्रायुधं वियति दृष्टमनेकवर्णं लोकस्य दर्शयति कर्म शुभानि यद्वत् ।
एवं च वज्रधृगवाप्य सितादिवर्णं [सम्पा]दयत्यविकलं खलु [कर्म] तद्वत् ॥ 55 ॥

यद्धेमरूप्यमणिशङ्खशिलाप्रवालवैडूर्यताम्ररजतादिषु संस्थितश्च ।
तत्रैव(क) एव हि शशी गगनोदरान्ताद्या(दा)वर्तमानवपुषा प्रतिभाति यद्वत् ॥ 56 ॥

एवं स नाथः खलु चित्तवज्रो नानाविधस्तिष्ठति जन्तुवर्गे ।
स चाप्ययं स्वात्मनि विश्वरूपो मायामयो व्याप्तसमस्तलोकः ॥ 57 ॥

रूपादिपञ्चकमथायतनानि यानि अष्टादशेति चोदिताः खलु धातवश्च ।
ज्ञानानि पञ्च विषयाश्च जगत्समस्तं मायामयः स इह वज्रधरोऽपि नान्यत् ॥ 58 ॥

यं पर्वता अष्टमहासमुद्रा द्वीपाश्च सर्वे नरकादिभेदाः ।
यत् स्थावरं जङ्गममेव दृष्टं तत्तत् स्वयं सर्वविदेव नान्यत् ॥ 59 ॥

एवं स्वचित्तमयमेव जगत्समस्तं विज्ञाय मोक्षभवकल्पनया विमुक्ताः ।
ये न भ्रमन्ति भवकल्पमहार्णवेषु तेभ्यो नमोऽस्त्वखिलसंस्कृतपारगेभ्यः ॥ 60 ॥

॥ स्वाधिष्ठानप्रभेदः समाप्तः । कृतिरियमार्यदेवपादानाम् ॥

———

1. अमृतकणिकाकारस्य नामसंगीतिटिप्पण्याधारेण पूरितोऽत्र पाठः ।

लुप्त बौद्ध वचन संग्रह

—डॉ० बनारसीलाल—

[इस शीर्षक के अन्तर्गत 'धीः' के पिछले अंकों में अनेक ग्रन्थ एवं ग्रन्थकारों के लुप्तप्राय वचनों का संग्रह किया गया था। प्रस्तुत अंक में मध्यमकशास्त्र की व्याख्या प्रसन्नपदा, बोधिचर्यावतारपंजिका तथा डाकिनीजालसंवररहस्य में उद्धृत तन्त्र एवं धारणियों के वचन संकलित किये गये हैं।]

आदिबुद्ध

[1]च्युतेर्हि(वि)रागसंभूतिर्विरागाद् दुःखसंभवः।
दुःखाद्धातुक्षयः पुंसां क्षयान्मृत्युरिति स्मृतः॥

[2]गुणापर्यन्तस्तोत्र

[2]यतः प्रज्ञातत्त्वं भजति करुणा संवृतिमतः
तवाभून्निःसत्त्वं जगदिति यथार्थं विमृशतः।
यदा चाविष्टोऽभूर्दशबलजनन्या करुणया
तदा तेऽभूदार्ते सुत इव पितुः प्रेम जगति॥

चक्रसंवर

[3]संवृत्या सत्त्वा अधोरेतसः, विवृत्या ऊर्ध्वरेतसः।

चतुष्पीठ

[4]मन्त्रादात्मपीठम्, आत्मपीठात्परपीठम्, परपीठात्तत्त्वपीठम्, यावदेति तदिति बोधिचित्तम् अवधूत्यां संवरेणेति पदसंचारक्रमः।

---

1. डा० जा० सं० र०, पृ० 4.
2. बोधिचर्यावतारपंजिका पृ० 229. सम्पादक ने उक्त श्लोक को रत्नदासविरचित गुणापर्यन्तस्तोत्र के 33वें श्लोक के रूप में इंगित किया है।
3. डा० जा० सं० र०, पृ० 5.
4. डा० जा० सं० र,० पृ० 4.

तथागतगुह्यसूत्र

(1)

[1]यां च रात्रिं शान्तमते तथागतोऽनुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंबुद्धः, यां च रात्रिमनुपादाय परिनिर्वास्यति, अत्रान्तरे तथागते नैकमप्यक्षरं नोदाहृतं न व्याहृतं नापि प्रव्याहरति नापि प्रव्याहरिष्यति। अथ च यथाधिमुक्ताः सर्वसत्त्वा नानाधात्वाशयास्तां तां विविधां तथागतवाचं निश्चरन्तीं संजानन्ति। तेषामेवं पृथक् पृथग् भवति—अयं भगवानस्मभ्यमिमं धर्मं देशयति, वयं च तथागतस्य धर्मदेशनां शृणुमः। तत्र तथागतो न कल्पयति न विकल्पयति। सर्वकल्पविकल्पजालवासनाप्रपञ्चविगतो हि शान्तमते तथागतः।

(2)

[2]अथ खलु शान्तमतिर्बोधिसत्त्वो भगवन्तमेतदवोचत्—उपशम उपशम इति भगवन्नुच्यते, क एष उपशमो नाम? कस्य चोपशमादुपशम इत्युच्यते? भगवानाह—उपशम इति कुलपुत्र उच्यते क्लेशोपशमस्यैतदधिवचनम्। क्लेशोपशम इति संकल्पविकल्पपरिकल्पोपशमस्यैतदधिवचनम्। संकल्पविकल्पपरिकल्पोपशम इति संज्ञामनसिकारोपशमस्यैतदधिवचनम्। संज्ञामनसिकारोपशम इति विपर्यासोपशमस्यैतदधिवचनम्। विपर्यासोपशम इति हेत्वारम्बणोपशमस्यैतदधिवचनम्। हेत्वारम्बणोपशम इति अविद्याभवतृष्णोपशमस्यैतदधिवचनम्। अविद्याभवतृष्णोपशम इति अहंकारममकारोपशमस्यैतदधिवचनम्। अहंकारममकारोपशम इति उच्छेदशाश्वतदृष्ट्युपशमस्यैतदधिवचनम्। उच्छेदशाश्वतदृष्ट्युपशम इति सत्कायदृष्ट्युपशमस्यैतदधिवचम्। इति शान्तमते ये केचिदारम्बणहेतुदृष्टिसंयुक्ताः संक्लेशाः प्रवर्तन्ते, सर्वे ते सत्कायदृष्टेरुत्पद्यन्ते, सत्कायदृष्ट्युपशमात् सर्वदृष्ट्युपशम इति। सर्वदृष्ट्युपशमात्सर्वप्रणिधानोपशम इति। सर्वप्रणिधानोपशमात्सर्वक्लेशोपशमः। तद्यथापि नाम शान्तमते वृक्षस्य मूले छिन्ने सर्वशाखापत्रफलानि शुष्यन्ति, एवमेव शान्तमते सत्कायदृष्ट्युपशमात्सर्वक्लेशा उपशाम्यन्ते। सत्कायदृष्टौ शान्तमते अपरिज्ञातायां सर्वोपादानोपक्लेशा उत्पद्यन्ते। सत्कायदृष्टिपरिज्ञातोऽपि सर्वोपादानोपक्लेशा नोत्पद्यन्ते न बाधन्ते।

शान्तमतिराह—का पुनर्भगवन् सत्कायदृष्टिपरिज्ञा? भगवानाह—आत्मसमुत्थानं शान्तमते सत्कायदृष्टिपरिज्ञा सत्त्वासमुत्थानं जीवासमुत्थानं पुद्गलासमुत्थानं दृष्टिसमुत्थानं सत्कायदृष्टिपरिज्ञा। न खलु पुनः शान्तमते सा दृष्टिरध्यात्मं प्रतिष्ठिता, न बहिर्धा प्रतिष्ठिता। सा दृष्टिः सर्वतोऽप्रतिष्ठिता। यत्तस्या अप्रतिष्ठिताया दृष्टेरप्रतिष्ठितेति ज्ञानम्, इयं शान्तमते सत्कायदृष्टिपरिज्ञा। सत्कायदृष्टिपरिज्ञेति शान्तमते शून्यताया एतदधिवचनम्। यच्छून्यतानुलोमिक्या क्षान्त्या तां दृष्टिं नोद्गृह्णाति, इयमपि

1. मध्यमकशास्त्रम् (बौ० सं० ग्र० 10), पृ० 236.
2. मध्यमकशास्त्रम् (बौ० सं० ग्र० 10), पृ० 153-54.

शान्तमते सत्कायदृष्टिपरिज्ञा। सत्काय इति शान्तमते शून्यतानिमित्ताप्रणिहितानभिसंस्काराजातानुत्पाददृष्ट्या तां दृष्टिं नोद्गृह्णाति, इयमपि शान्तमते सत्कायदृष्टिपरिज्ञा। सत्काय इति शान्तमते अकाय एषः, न कसति न विकसति न चिनोति नोपचिनोति, आदित एव तदभूतं परिकल्पितम्, यच्च अभूतं परिकल्पितम्, तन्न परिकल्पितम्, न परिकल्प्यते न विकल्प्यते, तन्न क्रियते न विठप्यते, नोत्थाप्यते नाध्यवस्यते। तदुच्यते उपशम इति।

शान्तमतिराह—उपशान्त उपशान्त इति भगवन्नुच्यते, कस्योपशमादुपशान्त इत्युच्यते? भगवानाह—आरम्बनतः शान्तमते चित्तं ज्वलति। यन्न भूय आलम्बनीकरोति तन्न ज्वलति, अज्वलन् उपशान्त इत्युच्यते। तद्यथापि नाम शान्तमते अग्निरुपादानतो ज्वलति, अनुपादानतः शाम्यति एवमेव आलम्बनतश्चित्तं ज्वलति अनालम्बनतः शाम्यति। तत्र शान्तमते उपायकुशलोऽयं बोधिसत्त्वः प्रज्ञापारमितापरिशुद्धः आलम्बनसमतां च प्रजानाति कुशलमूलालम्बनं च शमयति।

बोधिचित्तविवरण

[1]देशना लोकनाथानां सत्त्वाशयवशानुगाः।
भिद्यन्ते बहुधा लोक उपायैर्बहुभिः पुनः॥
गम्भीरोत्तानभेदेन क्वचिच्चोभयलक्षणा।
भिन्ना हि देशना भिन्ना शून्यताद्वयलक्षणा॥

रत्नचूडामणिमहायानसूत्र

[2]सर्वाकारवरोपेता शून्यता भावनीया योगिनेति।

लूयीपाद

[3]मलापगतचित्तस्य तत्राभ्यन्तरसंस्थितः।
उष्णबिम्बमहातेजाः प्रलयानलसंनिभः॥
चतुर्विंशतिवर्णेन करङ्को बलिमण्डितः।
विज्ञानाष्टनिरोधेन श्मशानं परिवेष्टितः॥
तन्मध्ये भावयेद् धीमान् ज्ञानविज्ञानसंभवम्।
ज्ञानेन तु करङ्काख्यं विज्ञानं ता(तो)रणं मतम्॥

---

1. सर्वदर्शनसंग्रह, पृ० 45. भाण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इंस्टीच्यूट, पूना 1978.
2. डा० जा० सं० र०, पृ० 9.
3. दुर्लभ ग्रन्थ परिचय, पृ० 33.

तस्योपरि स्थितं चन्द्रं शीतबिम्बं सुनिर्मलम् ।
षोडशस्वरसंभूतं छत्रं करङ्कया कृतम् ॥
तन्मध्ये भावयेद्योगी षड्भिर्डाकस्वभावतः ।
धर्माक्षरस्वरूपाख्यं कायत्रयैकसंवरम् ॥
तस्य पार्श्वस्थितं दिव्यं षड्भिः योगिनीसंभवः ।
धर्ममुख्येति विख्याता(तं) रहस्यं परमं पदम् ॥
चिन्तनीयं द्वयं बीजमासक्तमनुरक्तयः ।
महारागानुरागेण घनानन्दं प्रदर्शयेत् ॥
ऊकारस्तु हकाराधो हकारश्चचन्द्रलेखयोः ।
चन्द्रलेखागतं बिन्दौ तिष्ठेद् बिन्दु सुनिर्मलम् ॥
निराभासं निरालम्बं निर्निमित्तं निरञ्जनम् ।

वज्रपञ्जर

[1]षडङ्गं भावयेत्[2] तस्मात् स्वा[धि]ष्ठानसमं ततः ।
सर्वाङ्गसुन्दरं रम्यं सर्वासङ्गविवर्जितम् ॥
रम्यं तु डाकिनीचक्रं स्वाधिष्ठानं महाद्भुतम् ।
यदुदेति क्षणेनैव गुरुपादप्रसादतः ॥

वज्रमण्डधारणो

[3]तद्यथा मञ्जुश्रीः काण्डं च प्रतीत्य मथनीं च प्रतीत्य पुरुषस्य हस्तव्यायामं च प्रतीत्य धूमः प्रादुर्भवतीत्यग्निरभिनिवर्तते । स चाग्निसंतापो न काण्डसंनिश्रितो न मथनीसंनिश्रितो न पुरुषहस्तव्यायामसंनिश्रितः । एवमेव मञ्जुश्रीरसद्विपर्यासमोहितस्य पुरुषपुद्गलस्य उत्पद्यते रागपरिदाहो द्वेषपरिदाहो मोहपरिदाहः । स च परिदाहो नाध्यात्मं न बहिर्धा नोभयमन्तरेण स्थितः ।

अपि तु मञ्जुश्रीः यदुच्यते मोह इति, तत्केन कारणेनोच्यते मोह इति ? अत्यन्तमुक्तो हि मञ्जुश्रीः सर्वधर्मैर्मोहस्तेनोच्यते मोह इति । तथा नरकमुखा मञ्जुश्रीः सर्वधर्मा इदं धारणीपदम् । आह—कथं भगवन्निदं धारणीपदम् ? आह—नरका मञ्जुश्रीः बालपृथग्जनैरसद्विपर्यासविठपिताः स्वविकल्पसंभूताः । आह—कुत्र भगवन्नरकाः समवसरन्ति ? भगवानाह—आकाशसमवशरणा मञ्जुश्रीः

1. डा० जा० सं० र०, पृ० 8.
2. 'षडङ्गं भावयेद्' इतना अंश लु० बौ० व० सं०, पृ० 57 में संगृहीत हुआ है ।
3. मध्यमकशास्त्रम् (बौ० सं० ग्र० 10) पृ० 16-17.

नरकाः। तत्किं मन्यसे मञ्जुश्रीः स्वविकल्पसंभूता नरका उत स्वभावसंभूताः ? आह—स्वविकल्पेनैव भगवन् सर्वबालपृथग्जना नरकतिर्यग्योनियमलोकं संजानन्ति। ते च असत्समारोपेण दुःखां वेदनां वेदयन्ति दुःखमनुभवन्ति त्रिष्वप्यपायेषु।

तथा चाहं भगवन् नरकान् पश्यामि तथा नारकं दुःखम्। तद्यथा भगवन् कश्चिदेव पुरुषः सुप्तः स्वप्नान्तरगतो नरकगतमात्मानं संजानीते स तत्र क्वथितायां संप्रज्वलितायामनेकपौरुषायां लोहकुम्भ्यां प्रक्षिप्तमात्मानं संजानीयात्। स तत्र खरां कटुकां तीव्रां दुःखां वेदनां वेदयेत्। स तत्र मानसं परिदाहं संजानीयात् उत्त्रसेत् संत्रासमापद्येत। स तत्र प्रतिबद्धः समानः—अहो दुःखम्, अहो दुःखम् इति क्रन्देत् शोचेत् परिदेवेत्। अथ तस्य मित्रज्ञातिसालोहिताः परिपृच्छेयुः—केन तत्ते दुःखमिति। स तान् मित्रज्ञातिसालोहितानेवं वदेत् नैरयिकं दुःखमनुभूतम्। स तानाक्रोशेत् परिभाषेत्—अहं च नाम नैरयिकं दुःखमनुभवामि, यूयं च मे उत्तरि परिपृच्छथ केनैतत्तव दुःखमिति। अथ ते मित्रज्ञातिसालोहितास्तं पुरुषमेवं वदेयुः—मा भैर्भोः पुरुष। सुप्तो हि त्वम्। न त्वमितो गृहात् क्वचिन्निर्गतः। तस्य पुनरपि स्मृतिरुत्पद्यते—सुप्तोऽहमभूवम्। वितथमेतन्मया परिकल्पितमिति, स पुनरपि सौमनस्यं प्रतिलभते।

तद्यथा भगवन् स पुरुषोऽसत्समारोपेण सुप्तः स्वप्नान्तरगतो नरकगतमात्मानं संजानीयात्, एवमेव भगवन् सर्वबालपृथग्जना असद्‌रागपर्यवनद्धाः स्त्रीनिमित्तं कल्पयन्ति। ते स्त्रीनिमित्त कल्पयित्वा ताभिः सार्धं रममाणमात्मानं संजानन्ति। तस्य बालपृथग्जनस्यैवं भवति—अहं पुरुषः, इयं स्त्री, ममैषा स्त्री। तस्य तेन च्छन्दरागपर्यवस्थितेन चित्तेन भोगपर्येष्टिं चित्तं क्रामयति। स ततो निदानं कलहविग्रहविवादं संजनयति। तस्य प्रदुष्टेन्द्रियस्य वैरं संजायते। स तेन संज्ञाविपर्यासेन कालगतः समानो बहूनि कल्पसहस्राणि नरकेषु दुःखां वेदनां वेदयमानमात्मानं संजानाति।

तद्यथा भगवान् तस्य पुरुषस्य मित्रज्ञातिसालोहिता एवं वदन्ति—मा भैः, मा भैः, भो पुरुष। सुप्तो हि त्वम्। न त्वमितो गृहात् कुतश्चिन्निर्गत इति। एवमेव बुद्धा भगवन्तश्चतुर्विपर्यासविपर्यस्तानां सत्त्वानामेवं धर्मं देशयन्ति—नात्र स्त्री न पुरुषो न सत्त्वो न जीवो न पुरुषो न पुद्गलः। वितथा इमे सर्वधर्माः। असन्त इमे सर्वधर्माः। विठपिता इमे सर्वधर्माः, मायोपमा इमे सर्वधर्माः। स्वप्नोपमा इमे सर्वधर्माः। निर्मितोपमा इमे सर्वधर्माः। उदकचन्द्रोपमा इमे सर्वधर्माः। इति विस्तरः। ते इमां तथागतस्य धर्मदेशनां श्रुत्वा विगतरागान् सर्वधर्मान् पश्यन्ति। विगतमोहान् सर्वधर्मान् पश्यन्ति अस्वभावाननावरणान्। ते आकाशस्थितेन चेतसा कालं कुर्वन्ति। ते कालगताः समाना निरुपधिशेषे निर्वाणधातौ परिनिर्वान्ति। एवमहं भगवन् नरकान् पश्यामि। इति।

समन्तभद्र

[1]आकाशयवयोगेन गृह्णन्ति ज्ञानसागराः ।
अथ वज्रधरो राजा महासुखविवर्धनम् ॥
समयं देशयेत् सर्वं बुद्धत्वफलदायकम् ।
सुखैर्हृष्टैस्तथा नृत्यैर्गीतवाद्यैर्विकुर्वणैः ॥
गन्धमाल्यविलेपनस्तु विद्याराजः प्रसिद्ध्यति ।
यथा सुखं सुखं वाद्ये यथा रुचितचेष्टितम् ॥
यथाहारविहारोऽपि सिद्ध्यते परमाक्षरम् ।
खानपानप्रयोगैस्तु दिव्यालङ्कारभूषणैः ॥
सिद्ध्यते परमं तत्त्वं दिनेनैकेन चोदितः ।
नित्यं स्वसमयः साध्यो नित्यं पूज्यास्तथागताः ॥
नित्यं च गुरवे देयं तस्माद् बुद्धसमो गुरुः ।
यथा वैरोचनो नाथस्तथा वज्रधरो गुरुः ॥
यथाकाशो महाराजो वज्रधर्मो महामुनिः ।
समन्तराजो यथा नाथस्तथाचार्यः प्रगीयते ॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन वज्राचार्यं महागुरुम् ।
प्रच्छन्नवरकन्यासं नावमन्यात् कदाचन ॥

[2]समाज

त्रिसाहस्रिके श्रीसमाजे बुद्धो भगवानाह—

[3]वज्रपर्यङ्कतश्चित्तं मण्यन्तर्गतमीक्षयेत् ।
निष्पन्दादिसुखापूर्णं वैमल्यं यावदेति तत् ॥

[4]संवरतन्त्र

[5]सर्वत्र सर्वतः सर्वं सर्वथा सर्वदा स्वयम् ।
सर्वरत्नादिवल्लोके सर्वभावान(भावो) भवत्यसौ ॥

---

1. डा० जा० सं० र०, पृ० 11
2. गुह्यसमाजतन्त्र में यह वचन प्राप्त नहीं होता है ।
3. डा० जा० सं० र०, पृ० 3.
4. ज्ञानसिद्धि 8.1-9 के ये श्लोक संवरतन्त्र के हो सकते हैं । 'सर्वाकाशावकाशे श्रीवज्रसत्त्वस्तथागतः' यह वचन संवरतन्त्र के नाम से धीः 9, पृ० 41 में प्रकाशित किया है । संवरतन्त्र सम्भवतः चक्रसंवरतन्त्र ही है ।
5. गु० अ० सि०, पृ० 152-53

बुद्धक्षेत्रेषु सर्वेषु बुद्धनिर्माणमावहन् ।
दर्शय बुद्धकार्याणि बुद्धनिर्माणमायया ॥
बुद्धवज्रधरादीनां विश्वरूपत्रिधात्मकैः ।
त्रैधातुकमहाराज सर्वकार्याणि दर्शय ॥
सन्धिविग्रहयुद्धं हि राज्यं मायाविकुर्वितम् ।
त्रैधातुक महाराज अवष्टम्भय साहसैः ॥
प्रमादोऽयं जगत् सर्वं विश्वनर्तित दर्शय ।
एवमाद्यैरनन्ताग्रैः धर्मधातुसमासमैः ॥
आकाशधातुपर्यन्तैः सर्वतो विश्वसंवरैः ।
सर्वाकाशावकाशैः श्रीवज्रसत्त्वस्तथागतः ॥
विक्रीडति विचित्रैः श्रीरतिक्रीडाविकुर्वितैः ।
सर्वतो विश्वविनयैः सत्त्वधातुं प्रसाधयेत् ॥
एवमाद्यास्त्वनन्ताग्राः धर्मधातुसमासमाः ।
आकाशधातुपर्यन्ताः सर्वबुद्धादयो वराः ॥
सर्वाकाशावकाशे श्रीवज्रसत्त्वे प्रतिष्ठिताः ।
समाविशन्ति सर्वात्मा सिद्धैश्वर्यप्रसिद्धिभिः ॥

संवरोत्तरे

[1]कामसिद्धिरित्युक्ता भगवता प्रज्ञातन्त्रत्वात् ।

———

1. डा० जा० सं० र, पृ० 4.

बौद्ध पारिभाषिक शब्दों का अभिप्राय

—ठिनलेराम शाशनी—

['धीः' के पिछले अंकों में इस स्तम्भ के अन्तर्गत अनेक ग्रन्थों से विशिष्ट पारिभाषिक शब्दों की व्याख्याएँ संकलित की गई हैं। प्रस्तुत अंक में आचार्य रविश्री कृत "अमृतकणिकानाम श्रीनामसंगीतिटिप्पणी" तथा "डाकिनीजालसंवररहस्यम्" से पारिभाषिक व्याख्याओं का संकलन किया जा रहा है। "अमृतकणिका" की पाण्डुलिपि डा० बनारसीलाल से प्राप्त हुई है, जो अभी अप्रकाशित है।]

अकारः

तद्यथा भगवान् बुद्धः संबुद्धोऽकारसम्भवः।
अकारः सर्ववर्णाग्र्यो महार्थः परमाक्षरः ॥ (अमृतकणिका, पृ० 145)

अकारेणात्र प्रकृतिप्रभास्वरा महामुद्रा सहजानन्दरूपिणी प्रज्ञापारमिता उच्यते। सा च परमाणुधर्मतातीता आदर्शप्रतिसेनातुल्या। ततः सम्भवतीत्यकारसंभवः सम्यक्सम्बुद्धः प्रज्ञोपायात्मको वज्रसत्त्वो नपुंसकपदं सहजकाय इत्युच्यते। स चाकारः सर्ववर्णानामग्र्योऽनाहतत्वान्निरावरणत्वेन स्कन्धधात्वायतनविषयैकलोलीभावात्। उक्तं च—

ज्वलन्तं दीपसदृशं हृदि मध्यमनाहतम्।
अक्षरं परमं सूक्ष्मं महार्थं परमं प्रभुम् ॥
महामुद्रा स्थिता नाभौ ज्वलद्दीपशिखाकरा।
आदिस्वरस्वभावा सा धीति बुद्धैः प्रकीर्तितेति ॥
सकलबुद्धगुणदायकत्वान्महार्थः। अत एव परमाक्षर उत्पादनिरोधरहितः।

(अ० क०, पृ० 207)

अक्षोभ्यः

स च मणिवरटकावस्थितो निस्पन्दावस्थिताऽक्षोभ्यः, सकलतथागतवज्रकायत्वेन च्यवनदुःखाभावात्। (अ० क०, पृ० 204-205)

महाद्वेषो अक्षोभ्यः। (अ० क०, पृ० 209)

अग्रपुद्गलः

महासुखात्मकज्ञानकायत्वाद् अग्रपुद्गलः। (अ० क०, पृ० 321)

अचलः

विकल्पवायूपरमादचलः। (अ० क०, पृ० 247)

अज्ञानम्

अज्ञानमविद्यावासना। (अ० क०, पृ० 188)

अथ

अथेति अकारेणात्र नैरात्म्यप्रतिपादकत्वेन सर्वाकारवरोपेता शून्यता प्रोक्ता। थकारेणाप्यक्षोभ्यस्वभावप्रतिपादनेन निरालम्बकरुणा। ....तयोरद्वैधाद् मणिवरटकान्तःस्थितसहजानन्दशुक्रमेव शब्दाभिधेयमथेत्युच्यते। (अ० क०, पृ० 178)

अद्वयम्

अद्वयं शून्यताकरुणाभिन्नप्रज्ञोपायाद्वयं समाधिसम्भूतं महासुखस्वरूपं मन्त्रनीतौ। पारमितानये तु आत्मात्मीयग्राह्यग्राहकादिसकलमनोविस्पन्दरहितं सर्वधर्मनैरात्म्यस्वरूपस्वाभाविककायात्मकचित्तम्। (अ० क०, पृ० 200)

अद्वयवादी

अद्वयः सुखशुक्राद्वैधरूपः, तद्रूपप्रकाशनादद्वयवादी। (अ० क०, पृ० 236)

अनक्षरः

अच्युतकरुणारसपूर्णत्वादनक्षरः। (अ० क०, पृ० 262)

अविद्यमानवाच्यवाचकसम्बन्धेन धर्मधातुपरमाक्षरयोगात्मा अनक्षरः। (अ० क०, पृ० 313)

परमार्थरूपत्वादनक्षरः। (अ० क०, पृ० 314)

अनङ्गकायः

चूडामणिचक्रगतत्वेनानङ्गकायो धर्मधातुर्वज्रानङ्गः। (अ० क०, पृ० 312)

अनागामी

अनागामी क्लेशावशादसंसारित्वात्। (अ० क०, पृ० 239)

अनादिनिधनः

धर्मधातुज्ञानरूपत्वेन न विद्येते आदिनिधने उत्पादनिरोधौ विरमच्युतिक्षणौ यस्य स तथा। (अ० क०, पृ० 287)

अनादिः

अनादिराद्युत्पन्नो निष्प्रपञ्चः सर्वासत्संकल्पवर्जितः। (अ० क०, पृ० 235)

अनुत्तरः

चतुर्थाभिसम्बोधिरूपत्वादनुत्तरः। (अ० क०, पृ० 313)

अनुस्मृतिः

अनुस्मृतिर्नाम स्वेष्टदेवतादर्शनं प्रतिबिम्बाकारं विकल्परहितं तस्मादनेकरश्मिस्फुरद्रूपाकारं प्रभामण्डलम्। ततोऽनेकाकारस्फुरद्रूपां(पं) त्रैधातुकं स्म(स्फ)रणमित्यनुस्मृत्यङ्गमुच्यते।

(डाकिनीजालसंवररहस्य, पृ० 6)

अपराजितः

सर्वकायवाक्चित्तैक्येनाच्युतबोधिचित्तत्वेन परैर्विकल्पोर्मिभिर्न जीयत इत्यपराजितः।

(अ० क०, पृ० 288)

अप्रतिष्ठितनिर्वाणम्

विरमानन्दः संसारत्वात् प्रतिष्ठितः। मण्यग्रात् पतनान्निर्वाणम्, तद्भावान्न विद्यते प्रतिष्ठितं च निर्वाणं च यस्य स तथा। (अ० क०, पृ० 263)

अभवोद्भवः

शून्यतासम्भूतचतुःकायत्वादभवोद्भवः। (अ० क०, पृ० 330)

अभिषेकः

कुम्भो गुह्याभिषेकश्च प्रज्ञाज्ञानाभिधानकः।
पुनरेव महाप्रज्ञा तस्या ज्ञानाभिधानकः॥

कुम्भशब्देन स्तनौ उच्येते। तयोः स्पर्शनाद् यत् क्षरं क्षरसुखम्, स कलशाभिषेकः। गुह्यवज्रप्रवेशाद् यत् क्षरसुखं स गुह्याभिषेकः। पद्मे वज्रस्फारणाद् यत् क्षरसुखं स प्रज्ञाभिषेकः। महामुद्रानुरागेण यदक्षरं सुखं चतुर्थं तत्पुनस्तथाभिषेकः संवरसिद्धये सन्ध्याभाषया चोक्तो भगवता। (डा० जा० सं० र०, पृ० 1)

अभिसमयः

अभिसमयः प्रभास्वरनिराभासज्ञानसाक्षात्कारः। (अ० क०, पृ० 331)

अमरेन्द्रः

नैरात्म्ये ऐरावतगतित्वेन पुरन्दरस्वभावत्वादमरेन्द्रः। (अ० क०, पृ० 318)

अमिताभः

प्रज्ञाज्ञानमेव मूर्तिः शरीरं यस्य स हृदि स्थितोऽमिताभः। (अ० क०, पृ० 205)

अमोघगतिः

अमोघाऽव्याहता गतिर्यस्य सोऽमोघगतिः। निरन्तराव्याहतमहासुखशुक्रगत्यागतिस्वरूप इत्यर्थः। (अ० क०, पृ० 237)

अमोघपाशः

अमोघोऽवन्ध्यः पाश इव पाशः षडङ्गयोगलक्षणे यस्य स तथा, बोधिचित्तवज्रविनेयानां सत्त्वानां बिम्बदर्शनेन तथताप्रतिभासकत्वात् । (अ० क०, पृ० 252)

अमोघसिद्धिः

वाचा(चां) स्वरव्यञ्जनात्मिकानामीश्वरोऽनाहतस्वभावोऽमोघसिद्धिरूर्णाचक्रवर्ती ।

(अ० क०, पृ० 205)

अमोघः

अमोघमवन्ध्यमव्याहतसुखं जगदर्थम् । (अ० क०, पृ० 331)

अमोघोऽवन्ध्यः । (अ० क०, पृ० 252)

अर्हन्

सम्यक्समाधिवशात् सकलविकल्पक्लेशानरीन् हतवान् (इत्यर्हन्) । (अ० क०, पृ० 240)

अविद्या

अविद्या संसारवासना । (अ० क०, पृ० 267)

आगमः

महासुखत्वेनागमादागमः । (अ० क०, पृ० 331)

आत्मवित्

सर्वप्रपञ्चातिक्रान्तत्वेन गगनरूपत्वाद् आत्मवित् । (अ० क०, पृ० 321)

आत्मा

आत्मा निरालम्बस्वभावमचित्तचित्तम् । (अ० क०, पृ० 235)

आदिबुद्धः

सांक्लेशिकवैयवदानिकधर्माणां परमार्थतोऽभावेनाकारो निषेधार्थः । तेनादिबुद्धः । एकक्षण-पञ्चाकार-विंशत्याकार-मायाजालाभिसम्बोधिलक्षणं सुखम् आदिबुद्ध इत्यर्थः ।

(अ० क०, पृ० 287)

आनन्दः

निर्विकल्पमहासौख्य आकाङ्क्षालक्षणार्थकः ।
आनन्दोऽसौ सुखागारद्वारदेहलिकोपमः ॥
अहो सौख्यं महासौख्यं अहो भुञ्जे कथं कथम् ।
इत्याकाङ्क्षापरं चित्तं स आनन्दोऽग्रणीरिव ॥ (अ० क०, पृ० 210)

आनन्दचतुष्टयम्

भगवता एकस्मिन्नेव वज्रदेहे एकत्रैवानन्दे आनन्दाश्चत्वार उपदर्शिताः। तत्र कायानन्द-वागानन्द-चित्तानन्द-ज्ञानानन्दभेदेनेति। (डा॰ जा॰ सं॰ र॰, पृ॰ 2)

अ इ उ इति त्रयं कायवाक्चित्ताद्वयत्वेन आनन्दः। आ ई ऊ इति द्विरूपतया परमानन्दः। ए ओ अं इति त्रयं उभयस्वरात्मकं त्रिवज्रं विरमानन्दः। ऐ औ अः इति त्रयं वज्राभिन्नं चतुर्थः सहजानन्दः। एतेन चतुरानन्दस्वभावो भगवाननुत्पादरूपो व्याख्यातः।

(अ॰ क॰, पृ॰ 204)

आवरणम्

तथा चोक्तमार्यवसुबन्धुपादैः—

"..............त्रीण्यावरणानि—कुशलानुत्पादः, अपरिपूर्णसम्भारता, अमनसिकारता च। तथा सद्धर्मे अगोचरम्, लाभसत्कारपूजायां गौरवम्, सर्वेषु अकारुण्यं चेति"।

पुनश्चोक्तम्—"अप्रतिष्ठितनिर्वाणमप्यावरणं बोधिसत्त्वगोत्राणाम्" इति। तथा मोक्षाभिलाशो-(षो)ऽपि बोधिसत्त्वानामावरणमिति विस्तरः। (डा॰ जा॰ सं॰ र॰, पृ॰ 8)

उपेक्षा

उपेक्षा इत्यशेषकल्पनाकलङ्कापगमनात्। (डा॰ जा॰ सं॰ र॰, पृ॰ 1)

एकक्षणः

एकोऽद्वितीयः क्षणस्तुर्यातीतश्चतुरानन्दैकमूर्तिः सहजसम्बोधिलक्षणः। (अ॰ क॰, पृ॰ 297)

कङ्कालः

कं सुखं कलयतीति कङ्कालः। (अ॰ क॰, पृ॰ 255)

कमलम्

कमलं रजःशुक्रयोगेन सितरक्तगुणयुतं स्त्रीपद्मम्। (अ॰ क॰, पृ॰ 184)

करुणा

गुह्ये वज्रप्रवेशात् ततः समधिकतया करुणा। (डा॰ जा॰ सं॰ र॰, पृ॰ 1)

कामः

कामो महारागः। स एव वज्रसत्त्वो महासत्त्वः परमाक्षरसुख इति।

(डा॰ जा॰ सं॰ र॰, पृ॰ 4)

कायः

यत्कायं सर्वबुद्धानां निराभासं निरञ्जनम्।
अज्ञातमकृतं शुद्धमभावादिविवर्जितम्॥ (अ॰ क॰, पृ॰ 205)

कुलत्रयम्

कुलत्रयमिति कायवाक्चित्तचक्रम्, तेन नाभिचक्रे स्थितो वज्ररूपस्वभावो वैरोचनः। कर्णिकानाडीगतः पिता कायस्य बीजबिन्दुः। (अ० क०, पृ० 197)

कुलत्रयं कायवाक्चित्तानन्दपरमानन्दविरमानन्दरूपं यस्य स तथा। (अ० क०, पृ० 313)

कुलम्

कुलमद्वयत्वात्। (अ० क०, पृ० 197)

कुलिशेशः

कुलिशे वज्ररन्ध्रद्वयाभ्यन्तरे ओडियाने जालन्धरसंज्ञके महासुखस्वभावेन ईश्वरत्वात्। (अ० क०, पृ० 255)

कुलिशेश्वरः

कुलिशे वज्रशिखरपुरे स्थिरत्वेन ईश्वरत्वात् कुलिशेश्वरः। (अ० क०, पृ० 184)

कैवल्यज्ञानम्

कैवल्यज्ञानं शुद्धाद्वयधर्मतालक्षणं धर्मकायात्मकम्। (अ० क०, पृ० 242)

क्रोधराट्

क्रोधराट् विरमानन्दादनन्तरं राजत इति क्रोधराट्, महासुखस्वभावो मञ्जुश्रीरूपः। (अ० क०, पृ० 254)

क्रोधः

क्रोधेन सर्वधर्मशून्यतास्फुटीभावेन, क्रोधे विरमपर्यन्ते वा, "क्रोधो विरमपर्यन्तः" इति पीठविवृतिः। (अ० क०, पृ० 187)

क्लेशधातुः (अष्टादश)

क्लेशधातवोऽष्टादश अस्थि-चर्म-मांस-रक्त-स्नायु-मज्जा-मेदः-शुक्र-श्लेष्म-विट्-मूत्र-खेट-सिंहा-(घा)ण-यकृत्-प्लीहा-पिशित-मल-रोमाख्याः। (अ० क०, पृ० 310)

क्लेशः

क्लेशः च्युतिदुःखम्। (अ० क०, पृ० 188)

क्षितिगर्भः

क्षितिशब्देन पञ्चभूतोपलक्षणात् क्षितिगर्भो हेतुः, क्षितिगर्भः सहजानन्दबिन्दुः। (अ० क०, पृ० 296)

क्षीणास्रवः

बोधिचित्तप्रयोगेण तदुत्पादितदृष्टान्तदार्ष्टान्तिकावाच्यतत्त्वसुखत्वेन सकलपरिसमाप्तार्थत्वात् सद्गुरूपदेशवशेन चतुर्थाभिषेकक्षणे तुर्यक्षणातीतत्वेन शिष्यस्य तत्क्षणात् एवातीवश्रद्धायोगेन सकलविद्याप्रहाणात् क्षीणा आस्रवा यस्य यतो वा स तथा। (अ० क०, पृ० 240)

क्षेत्रम्

परिशुद्धनाडीचक्रात्मकत्वात् क्षेत्रम्। (अ० क०, पृ० 332)

गगनोद्भवः

स्वयम्भूरूपत्वाद् गगनोद्भवः। (अ० क०, पृ० 330)

गणपतिः

गणो मायोपमार्थरूपः, तथागतविद्याप्रभृतयो वा, तेषां पतिर्गणपतिः स्वामी, बोधिचित्त-स्वभावत्वात्। (अ० क०, पृ० 238)

गणाचार्यः

गणानामानन्दपरमानन्दविरमानन्दानां आचार्यः सहजरूपोपदर्शकः। (अ० क०, पृ० 238)

गणेशः

गणानां पञ्चस्कन्धादीनां सहजरूपताऽऽपादनेन परमेश्वरत्वाद् गणेशः। (अ० क०, पृ० 238)

गोष्पतिः

गीर्ध्वनिः षडक्षरात्मक एकार आधारात्मकः, तस्य पतिः षष्ठो वंकारो वज्रधर आधेय-स्वभावः। तथा च वक्ष्यति—

पञ्चाक्षरो महाशून्यो बिन्दुशून्यः षडक्षर इति।

एकार-वंकाररूप इत्यर्थः। (अ० क०, पृ० 189)

गुह्यधृक्

गुह्यं परमाक्षरचतुर्थबिन्दुः, तद्धरतीति यथा। (अ० क०, पृ० 192)

गुह्यराट्

गुह्यं श्रावक-प्रत्येकबुद्धयानयोरुत्तरं वज्रयानं कायवाक्चित्तज्ञानैकलोलीभावो वा, तत्र महासुखरूपतया राजत इति गुह्यराट्। पञ्चगुह्यराजत्वाद् वा गुह्यराट्।

(अ० क०, पृ० 183)

गुह्येन्द्रः

गुह्येन्द्रः कायवाक्चित्तैश्वर्यलाभी। (अ० क०, पृ० 192)

गौतमः

परमाक्षरसुखत्वादेव गौतमः शाक्यमुनिः सिद्धार्थः । (अ० क०, पृ०, 283)

चक्रवर्ती

महासुखशुक्ररूपतया षट्चक्रेषु वर्तितुं शीलमस्य स चक्रवर्ती । (अ० क०, पृ० 238)

चतुर्मुद्रा

कर्ममुद्रा-महामुद्रा-ज्ञानमुद्रा-समयमुद्रा..........उक्तं च चतुर्मुद्रोपदेशे तद्यथा—

कर्मज्ञानमहामुद्रासमयाख्यः प्रभास्वरः ।
हेतुर्भाव्या तथा प्राप्य चतुर्थोऽविनश्वरः ॥

हेतुरिति प्रथमं कर्ममुद्रोद्भूतं यत्सहजमच्युतसुखम् । उक्तं च भगवता—तत्सत्यमेव, किन्तु संवृत्या लौकिकदृष्टान्तेनादर्शमिव न परमार्थतः । तस्मात्तीक्ष्णेन्द्रियेण न ग्राह्या कर्ममुद्रा । कर्ममुद्रा च स्तनकेशवती कामधातुसुखस्य हेतुः । कर्म चुम्बनालिङ्गनगुह्यस्पर्शवज्रस्फालनादि-व्यापारात्मकम्, तेनोपलक्षिता मुद्रा प्रत्ययकारिणी । प्रत्ययोऽत्र क्षरसुखलक्षणः । मुदं सुखविशेषं राति ददातीति मुद्रा भाव्या । ज्ञानमुद्रा, सा च स्वचित्तपरिकल्पिता विश्वमात्र-(ता) देवीस्वभावा पूर्वानुभूता रूपधातुसुखस्य हेतुः । ज्ञानं पूर्वहसितरमितादिभावनालक्षणम्, ऽत्ययोऽत्र स्पन्दसुखलक्षणः । स्कन्धधात्वायतनादिदेवताकारेण विशोध्य मण्डलचक्रस्वभावं यथा विधिना स्फुटीकृत्य मन्थमन्थानयोगेन ज्ञानवह्निं प्रज्वाल्य यावद् दग्धेऽहं स्रवते शशी ललाटकण्ठहृन्नाभिवज्रकमलकर्णिकाग्रतः । बोधिचित्तरूपेण विषयेन्द्रियसमस्तमहासुखसाग-रस्य यदेकलोलीभूततन्मयसमाधिमापन्नो भूत्वा तिष्ठेत्, यावत् श्रीमहामुद्राऽभिमुखी भवतीति प्राप्या । महामुद्रा स्वप्नेन्द्रजालमनोमयसदृशी । महती चासौ (मुद्रा) महामुद्रा चेति कृत्वा । महत्त्वं पुनरस्याः सर्वाकारवरोपेतत्वं न प्रादेशिकत्वम्, मुद्र्यतेऽनेनेति बोधिचित्तवज्रेण मुद्रा । प्रत्ययोऽत्र स्वचित्तपरिकल्पनाधर्मरहितो धूमादिनिमित्तपूर्वकः स्वचित्तप्रतिभासो योगिगम्यः प्रतिसेनावदिति । तामालिङ्ग्य यावत्समयमुद्रा साक्षात् क्रियते । अविनश्वरा परमाक्षर-स्वरूपिणी सा च फलरूपमहामुद्रा ।

मुदं परमाक्षरसुखलक्षणं राति सर्वकालमादत्ते पूर्णावस्थायामचलयोगेनेति मुद्रा ।..............
कायवाक्चित्तज्ञानविशुद्ध्या मुद्राचतुष्टयमुक्तम् । श्री आदिबुद्धे चोक्तम्—

क्षरः क्षरः (क्षरोऽक्षरः) ततः स्पन्दो निस्पन्दो विमलोऽपरः ।

[1]अब्जे वज्रप्रवेशः शिखिनि च मरुतो बिन्दुपातस्तृतीयः,
एतद्योगत्रयस्य प्रकटितनियता कायवाक्चित्तमुद्रा।
रागारागान्तकाद्या परमसुखनिधिर्योगगम्या चतुर्थी
मुद्राणां सैव माता भवति सुफलदा श्रीगुरोर्वक्त्रमेषा।

उक्तं च वैरोचनाभिसम्बोधितन्त्रे—

कर्ममुद्रां समासाद्य धर्ममुद्रां विभावयेत्।
तत्र (अत) ऊर्ध्वे महामुद्रा तस्याः समयसम्भवः॥

अन्यत्र च—

तां मोक्षलक्ष्मीमविनष्टसौख्यीं(ख्यां) त्यक्त्वा शुभां भगवतीं युवतिं रमन्ते।
प्रायेण पूर्वार्ज्जितमुग्रकर्म येनामृतं त्यज्य विषं पिबन्तीति॥

श्री आदिबुद्धे च—

[2]एता मुद्राश्चतस्रोऽक्षरसुखफलदा योगिना भावनीयाः,
सर्वस्मिन् सर्वकालं सुरतरतिगतैर्लोकमार्गप्रयुक्तैः।
ग्रामारण्येऽथ श्मशानेऽशुचिशुचिनिलये वेश्मदेवालये च,
वर्णावर्णाभियुक्तैस्तनुबलसुखदैरन्नपानादियुक्तैः ॥

(अ० क०, पृ० 322-326)

चतुःस्मृतिसमाधिराट्

हसितेक्षणपाण्यावाप्तिद्वन्द्वचतुःसमाधिराजनाच्चतुःस्मृतिसमाधिराट्। (अ० क०, पृ० 303)

चत्वारि पीठानि

चतुष्पीठे चोक्तम्—
"मन्त्रादात्मपीठम्, आत्मपीठात्परपीठम्, परपीठात्तत्त्वपीठम्"। (डा० जा० सं० र०, पृ० 4)

चत्वारिंशत् क्षणाः

रागो रक्तं तुष्टं मध्यमतुष्टमतितुष्टं हर्षणं प्रामोद्यं विस्मयो हसितमाह्लादनमालिङ्गनं चूषणं (स्थैर्यं) वीर्यं मानः करणं हरणं बलमुत्साहः साहसं मध्यमसाहसमुत्तमसाहसं रौद्रं विलासो वैरं शुभं वाक्स्फुटं सत्यम् असत्यं निश्चयो निरुपादनं दाहत्वं चोदनं शौर्यम् अलज्जा धूर्तत्वं दुष्टत्वं शठकौटिल्यमिति चत्वारिंशत् क्षणा उपायज्ञानस्य। (अ० क०, पृ० 310)

---

1. का० त०, 3.126
2. का० त०, 5.54

चित्तवज्रम्

द्विविधं चित्तवज्रं तु पिण्डचित्तं प्रकाशं चेति ।
पिण्डचित्तं कर्ममुद्राध्यानम्, प्रकाशं महामुद्रेति ॥ (डा० जा० सं० र०, पृ० 2)

चित्तस्यैकाग्रता

चित्तस्यैकाग्रता नाम बिम्बेन सह चित्तस्यैकीकरणमिति । (डा० जा० सं० र० पृ० 6)

जगद्गुरुः

जगतां श्वासवातानां कायवाक्चित्तानां वा गुरुस्तत्त्वोपदेष्टा । (अ० क०, पृ० 188)

सर्वप्रपञ्चोपशमेनाविचलितसुखज्ञानविहारत्वाज्जगद्गुरुः । (अ० क०, पृ० 319)

जितारिः

अविद्यादिद्वादशाङ्गनिरोधनाज्जितारिः । (अ० क०, पृ० 237)

जितेन्द्रियः

उष्णीषमणिशिखराश्रितत्वेन सर्वेन्द्रियविषयानभिभवनीयत्वाद् द्वीन्द्रियसंयोगानुत्पन्नत्वाद् वा । (अ० क०, पृ० 241)

जिनजिक्

जिनान् अक्षोभ्यादीन् जनयतीति नैरुक्त्या जिनजिग् विमलनिराभासचित्तावबोधरूप इत्यर्थः। (अ० क०, पृ० 294)

जिनः

रागविरागमध्यरागविजयित्वाज्जिनः । (अ० क०, पृ० 237)

ज्ञानसंभवः

तुर्यातीतास्तिनास्तिव्यतिक्रान्तस्वसंवेद्यत्वाद् ज्ञानसंभवः । (अ० क०, पृ० 330)

तत्त्वः

भावाभावैकरूपतत्वयोगात्तत्त्वः । (अ० क०, पृ० 303)

तथता

तथता वामदक्षिणवाहभङ्गेनावधूतीवाहः । उक्तं च--

नाडिकादिस्वभावेन देवतातत्त्वयोगतः ।
तासामेतत्परं शुद्धं स्वरूपं निःस्वभावता ॥
यत्प्रज्ञोपाययोरैक्यं सर्वाकारैकसंवरम् ।
सावधूती विधूतात्मा मध्यमा प्रतिपन्मता ॥
आदिमध्यान्तसंकल्पसम्बन्धानवधानतः ।
शुद्धः स्फटिकसंकाशः प्रकाशः सोऽवधूतिकः ॥ (अ० क०, पृ० 26 ।)

तथतात्मा

महासुखशुक्रलिप्ततया तथतात्मा। (अ० क०, पृ० 235)

तथागतः

तथा सहजसुखाकारेणोष्णीषकर्णिकातो वज्रमणिवरटके आगतं विवृत्या मणिवरटकात् पुनरुष्णीषचक्रगतं तथागतम्। उक्तं च—

आगतश्च गतश्चैव व्याप्य विश्वं व्यवस्थितः।
गत्यागतिनिरोधाश्च(च्च) तथागत इति स्मृतः॥ (अ० क०, पृ० 187)

तथा तथता कर्मादिमुद्रा, तत्र गतमानन्दादिसुखज्ञानं यस्य स तथागतः।

(अ० क०, पृ० 288)

तथता धर्मादया अवधूती, तद्गतत्वेन सर्वगुणोदयाद्दशविधप्राणादिवायुनिरोधेन दशभूमिसमन्तप्रभापर्यन्तफलभूमिप्राप्तस्तथागतः।

यथैवागतो वज्रमणिवरटकम्, तथैव उष्णीषचक्रं गतस्तथागतः। (अ० क०, पृ० 237)

त्रयस्त्रिंशत् क्षणाः

प्रकृतयो विरागो मध्यविरागोऽतिविरागो यन्मनोगतागतम्। शोको मध्यशोकोऽतिशोकः। सौम्यविकल्पो भीतं मध्यमभीतमतिभीतम्। तृष्णा मध्यतृष्णा अतितृष्णा उपादानं निःशुभ्रं क्षुत्तृष्णावेदना समवेदना अतिवेदना। विदविद् धारणापदं प्रत्यवेक्षणं लज्जा कारुण्यं स्नेहो मध्यस्नेहोऽतिस्नेहश्चकितं सञ्चयो मात्सर्यमिति त्रयस्त्रिंशत् क्षणाः प्रज्ञाज्ञानस्य।

त्रिकायधृक्

सहजान्तर्वर्तिकायवाक्चित्तत्वात् त्रिकायधृक्। (अ० क०, पृ० 247)

त्रिलोकम्

त्रयोलोकास्त्रिलोकम्, कायवाक्चित्तम्। (अ० क०, पृ० 182)

त्रिलोकं कायवाक्चित्तलक्षणम्। (अ० क०, पृ० 195)

त्रैलोक्यं कायत्रयम्। (अ० क०, पृ० 264)

त्रैविद्यः

तिस्रो विद्याः कामावचररूपावचरमहामुद्रासिद्धिसाधिका यस्य स एव त्रैविद्यः।

(अ० क०, पृ० 320)

दर्पः

अतिमानो दर्पः। (अ० क०, पृ० 333)

दर्शनम्

दर्शनमिति चुम्बनमालिङ्गनम्। (डा० जा० सं० र०, पृ० 2)

दशकामावस्थाः

दशकामावस्थाश्च दशधूमादिनिमित्तानि प्रत्याहाराङ्गरूपाणि । तथा चोक्तं श्रीकालचक्रे[1]—

चिन्ताकाङ्क्षाज्वरोऽङ्गे वरमुखकमले शुक्तिरन्या प्रवृत्तिः,
कम्पोन्मादश्च घूर्मा प्रभवति मनसो विभ्रमस्तीव्रमूर्च्छा ।
धूमाद्या वज्रिणस्ता प्रकटदशविधाः प्राणिनोऽङ्गेष्ववस्था,
लोके ता मन्मथस्य प्रकटितनियताः को जिनः कश्च कामः ॥

(अ० क०, पृ० 217)

दशधातवः

वायुश्चित्तं बोधिचित्तं रक्तं मज्जा अस्थीनि स्नायुर्मांसमिन्द्रियाणि चर्म चेति ।

(अ० क०, पृ० 224)

दशबलबलिता

दशविधधूमादिनिमित्तबलयोगाद् दशबलबलिता । (अ० क०, पृ० 331)

दशभूमीश्वरः

दशानां भूमीनां प्रमुदितादीनां चतुर्विंशतिपीठोपपीठादिलक्षणानामीश्वरः प्रधानं सहजज्ञानाकारेण व्यापकत्वात् । अस्यायमर्थः—

दानात् प्रमुदितो योगी शीलवान् विमलो भवेत् ।
क्षान्त्या प्रभाकरी वीर्यादर्चिष्मान् पुण्यवानसौ ॥
ध्यानादभिमुखाकृष्टः प्रज्ञया तु सुदुर्जयः ।
दूरङ्गमो महोपायो बलवानचलो भवेत् ॥
साधु[श्च] प्रणिधानेन धर्ममेघस्तु ज्ञानवान् ।
जिनस्तथागतः प्रत्यात्मवेद्य एकादशो भवेत् ॥ (अ० क०, पृ० 222-223)

दंष्ट्राकरालः

दंष्ट्रा चण्डाली तस्या गुरूपदेशाज्ज्वलितायाः शिखरभूतत्वाद् दंष्ट्राकरालः ।

(अ० क०, पृ० 254)

दानवाधिपः

अनुपमाद्वयश्रीधर्मामृतलाभेन राहुस्वभावत्वाद् दानवाधिपः । (अ० क०, पृ० 318)

देवातिदेवः

महारागात्मककायत्वेन ब्रह्मात्मकत्वाद् देवातिदेवः । (अ० क०, पृ० 318)

---

1. का० त० ४।१२६

देवेन्द्रः

प्रभास्वरचित्तवज्रत्वेन विष्णुस्वभावत्वाद् देवेन्द्रः । (अ० क०, पृ० 318)

द्वादशभूमयः

ताश्च भूमयः समन्तप्रभा-अमितप्रभा-गगनप्रभा-वज्रप्रभा-रत्नप्रभा-पद्मप्रभा-कर्मप्रभा-अनुपमा-निरुपमा-प्रज्ञाप्रभा-सर्वज्ञता-प्रत्यात्मवेद्याख्याः । (अ० क०, पृ० 204)

द्वादशाकारसत्यार्थः

निःस्प(ष्य)न्दविपाकपुरुष(षा)कारवैमल्यक्षणानां प्रत्येकं त्रैगुण्याद् द्वादशाकाराद् द्वादशभूमयः संवृतिपरमार्थसत्याभेदेन तद्योगाद् द्वादशाकारसत्यार्थः । तत्र कायवाक्चित्तविवेकनिःस्प-(ष्य)न्दभेदेन प्रथमं त्रिकं निर्माणकायस्य । भास-प्रतिभास-प्रकृतिनिराभासविपाकभेदेन द्वितीयं त्रिकं संभोगकायस्य । चित्तचैतसिकाविद्यापुरुष(षा)कार(वैमल्यविपाक)भेदेन तृतीयं त्रिकं धर्मकायस्य । आनन्दद्वयविरमसहजानन्दवैमल्यभेदेन चतुर्थत्रिकं ज्ञानकायस्येति । प्राणक्षयेण रजोनिरोधाद्वा निरोधितमेषवृषादिद्वादशराशित्वेन वा द्वादशभूमिलाभाद् द्वादशा-कारसत्यार्थः । (अ० क०, पृ० 308)

द्विपदोत्तमः

संवृतिपरमार्थज्ञानद्वयेन द्विपदेनोत्तमः श्रेष्ठो द्विपदोत्तमः । अथवा द्विपदेन वज्रमणिशिखरो-ष्णीषाप्रतिष्ठाद्वयेन उत्तमो द्वादशभूमीश्वरः । यथोक्तं विमलप्रभायाम्—

एकं पदं वज्रमणौ रजोऽर्के उष्णीषशुक्रे शशिनि द्वितीयम् ।
न्यस्तं सदोच्छेद्यमभेद्यमिष्टं भर्तुस्त्रिलोकमहितं शिरसा प्रणम्य ॥

(अ० क०, पृ० 194)

धर्मगण्डी

सकलसुखमयवाग्वज्रसमाधिविस्फारितसर्वधर्मप्रकाशकधर्मज्योति(ती)रूपत्वाद् धर्मगण्डी ।
(अ० क०, पृ० 262)

धर्मधातुः

कायत्रयात्मकमहासुखैकरूपत्वाद् धर्मधातुः । (अ० क०, पृ० 244)

धर्मयोनिः

सर्वसत्त्वानामुत्पत्तिस्थानत्वाद् ज्ञानकायत्वाद् धर्मयोनिः । (अ० क०, पृ० 248)

धर्मराट्

धर्मो धर्मधातुः स्वाधिष्ठानम्, तत्र तेन वा राजत इति धर्मराट्, सहजज्ञानालोकरूपत्वात् ।
(अ० क०, पृ० 244)

धर्मराजः

धर्मेण महासुखवर्षेण लोकान् रञ्जयतीति धर्मराजः। (अ० क०, पृ० 244)

धर्मेश्वरः

धर्मेण सहजानन्दचतुष्टयेन ईश्वरस्त्रिलोकस्वामी, नित्यं बोधिचित्तरसास्वादनैश्वर्यात्।
(अ० क०, पृ० 244)

धातुः

सर्वधर्मप्रकृतिकत्वाद्धातुः। (अ० क०, पृ० 244)

धारणा

धारणा नाम प्राणस्य माहेन्द्रवारुणाग्निवायुमण्डला(ले) नाभौ कृतिश्चैव (हृदि कण्ठे) ललाटे प्रवेशः। न बाह्यनिर्गमः। बिन्दौ प्राणप्रवेशनमिति धारणाङ्गमुच्यते। (डा० जा०सं०र०, पृ० 6)

ध्यानम्

चतुरानन्दैकत्वाद् ध्यानम्। (अ० क०, पृ० 246)

प्रज्ञादिपञ्चविधध्यानरूपत्वाद् ध्यानम्। (अ० क०, पृ० 332)

ध्यानं नाम शून्येषु सर्वभावेषु चित्तप्रवृत्तिः (डा० जा० सं० र०, पृ० 5)

नाथः

नाथमच्युतबोधिचित्तम्। (अ० क०, पृ० 187)

नाथः समाध्यनुगमात्। सकलसत्त्वानामनाभोगेनाधिष्ठानात्। (अ० क०, पृ० 224)

अद्वययोगेन सुस्थितत्वान्नाथः। (अ० क०, पृ० 266)

नामसंगीतिः

नानातन्त्रोपलक्षितमहासुखाकारसहजानन्दसुखस्य नाम्ना सम्यग्ज्ञानं(गानं) नामसंगीतिः।
(अ० क०, पृ० 190)

निराकारः

कल्पनापोढाभ्रान्तप्रत्यक्षदर्शनान्निराकारः परमाणुधर्मतातीतः कल्पनारहितत्वात् पिहितापिहितनेत्रगम्यः। (अ० क०, पृ० 316)

निराभोगः

अनाभोगेन पञ्चकामोपभोगसुखत्वान्निर्गत आभोगो विकल्पप्रवृत्तिरस्य स तथा।

उक्तं च—

"पूर्णप्रणिधानाहितसततानाभोगवाहि परकार्यम्" इति। (अ० क०, पृ० 287)

निर्माणकायः

अनाभोगबहिर्जगदर्थनानाप्रकृतिको निर्माणकायः। (अ० क०, पृ० 318)

निर्वाणम्

भावाभावपरामर्शशून्यत्वान्निर्वाणम् । (अ॰ क॰, पृ॰ 285)

निर्विकल्पः

परमार्थज्ञानविकल्पस्याप्यभावान्निर्विकल्पः । उक्तं च—

[1]परमार्थविकल्पेऽपि नावलीयेत पण्डितः ।
को हि भेदो विकल्पस्य शुभे वाप्यशुभेऽपि वा ॥ (अ॰ क॰, पृ॰ 287)

नैरात्म्यम्

नैरात्म्यं सर्वधर्माणां निराभासलक्षणं विश्वबिम्बरूपम् । (अ॰ क॰, पृ॰ 237)

पञ्चकायात्मकः

जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्त(प्ति)-तुरीय-तुरीयातीतत्वेन पञ्चकायात्मकः । (अ॰ क॰, पृ॰ 247)

पञ्चचक्षुः

प्रत्याहारध्यानप्राणायामधारणानुस्मृत्यङ्गस्फुटीभावात् पञ्चचक्षुः । (अ॰ क॰, पृ॰ 248)

पञ्चज्ञानात्मकः

पञ्चकुलात्मकत्वेन आदर्शादिज्ञानात्मकत्वात् पञ्चज्ञानात्मकः । उक्तं च—

[2]बोलककोलयोगेन स्पर्शात् काठिन्यवासना ।
कठिनस्य मोहधर्मत्वाद् मोहो वैरोचनो मतः ॥
बोधिचित्तं द्रवं यस्माद् द्रवमब्धातुकं मतम् ।
अपामक्षोभ्यरूपत्वाद् द्वेषोऽक्षोभ्यनायकः ॥
द्वयोर्घर्षणसंयोगात् तेजः संजायते सदा ।
रागोऽमितवज्रः स्याद् रागस्तेजःसमुद्भवः ॥
कक्कोलहेतु यच्चित्तं तत् समीरणरूपकम् ।
ईर्ष्या अमोघसिद्धिः स्यादमोघो वायुसम्भवः ॥
सुखं रागं भवेद् रक्तं रक्तिराकाशलक्षणा ।
आकाशं पिशुनवज्रः स्यात् पिशुनमाकाशसम्भवः ॥ इति ।

अथवा मातापितृसंयोगे विपतुर्बोधिचित्तबीजेन चन्द्राक्षोभ्यद्रवत्वादर्शरूपता । मातुः स्वयम्भू-कुसुमेन सूर्यरत्नसम्भवरागत्वात् समता । पद्मे वज्रप्रवेशेन महारागबीजेनामिताभसुखत्वात्

1. आ॰ मा॰, पृ॰ 6
2. हे॰ त॰, 2. 2. 53-57.

प्रत्यवेक्षणा। चलनस्पन्दनानुभवामोघसिद्धिरूपत्वात् कृत्यानुष्ठानम्। अन्तराभवविज्ञानप्रवेशेन वर्धनम्, ततो वैरोचनो जननीगर्भान्निष्क्रमणं बिम्बनिष्पत्तिः सुविशुद्धधर्मधातुः।

(अ० क०, पृ०, 248)

पञ्चशिखा

आलोकालोकाभासालोकोपलब्धिप्रभास्वरधर्मधातुलक्षणः(णा) पञ्चशिखा।

(अ० क०, पृ० 247-282)

पञ्चाकारभावना

मूलतन्त्रपञ्चाकारज्ञानस्तवे पञ्चश्लोकैः पञ्चाकारभावना भगवतोक्ता। तद्यथा—

शून्यो भावसमूहोऽयं कल्पनारूपवर्जितः।
दृश्यते प्रतिसेनेव कुमार्या दर्पणे यथा॥

लोकोत्तरसत्यरूपस्कन्धः, आदर्शज्ञानम्।

सर्वभावसमो भूत्वा एको भावोऽक्षरः स्थितः।
अक्षरज्ञानसंभूतो नोच्छेदो न च शाश्वतः॥

वेदनास्कन्धः, समताज्ञानम्।

सर्वसंज्ञात्मका वर्णा अकारकुलसम्भवाः।
महाक्षरपदप्राप्ता न संज्ञा न च संज्ञिनः॥

संज्ञास्कन्धः, प्रत्यवेक्षणाज्ञानम्।

अनुत्पन्नेषु धर्मेषु संस्काररहितेषु च।
न बोधिर्नैव बुद्धत्वं न सत्त्वो नैव जीवितम्॥

संस्कारस्कन्धः, कृत्यानुष्ठानज्ञानम्।

विज्ञानधर्मतातीता ज्ञानशुद्धा ह्यनाविलाः।
प्रकृतिप्रभास्वरा धर्माः धर्मधातुर्गतिं गताः॥

विज्ञानस्कन्धः, सुविशुद्धधर्मधातुज्ञानम्। (अ० क०, पृ 328-329)

पञ्चाक्षरशून्यम्

ज्ञानस्कन्धविज्ञानस्कन्धज्ञानधात्वाकाशमनःश्रोत्रशब्दधर्मधातुदिव्येन्द्रियभगमूत्रस्रावशुक्रच्युतिरूपाणां निरावरणता प्रत्येकं स्वस्वविषयग्रहणविवर्जितत्वं समरसमेकलोलीभूतत्वं परमाक्षरशून्यं योगिस्वसंवेद्यम्, न सर्वाभावलक्षणम्। तदेवाह—तमाकारशून्यं रेखामात्रमनुच्चार्यं कर्तृकाकारं मध्ये, संस्कारस्कन्धवायुधातुघ्राणस्पर्शवागिन्द्रियविट्स्रावाणामेकलोलीभूतत्वं मध्यानाहतचिह्नात् पूर्वेण इकारशून्यं दण्डाकारं द्वितीयाक्षरशून्यम्। वेदनास्कन्धतेजोधातु-

चक्षूरसपाणिगतीनां निरावरणगतं मध्यानाहतचिह्नाद्दक्षिणेन लृकारशून्यं बिन्दुद्वयं तृतीयाक्षरशून्यम् । संज्ञास्कन्धतोयधातुजिह्वारूपादेन्द्रियादीनां निरावरणता मध्यानाहतचिह्नाद्वामेन बिन्दुरूपमेकमनुच्चार्यमूकारशून्यं चतुर्थाक्षरमहाशून्यम् । रूपस्कन्धपृथिवीधातुकायेन्द्रियगन्धपाटवालापानां समरसत्वमेकलोलीभूतत्वं मध्यानाहतचिह्नात् पश्चिमेन तद् हलाकृतिरेकारशून्यं पञ्चाक्षरशून्यम् । (अ० क०, पृ० 314-315)

पद्मनर्तेश्वरः

अवाच्यसुखबोधिचित्तत्वात् पद्मनर्तेश्वरः । (अ० क०, पृ० 291)

परमानन्दः

परमानन्दः सांक्लेशिकसुखभोगलक्षणत्वाद् भवः संसारः । ....

रागः परमानन्दः, आसक्तिलक्षणत्वात् । (अ० क०, पृ० 274)

भावेषु भावनारोपशून्यत्वेन विमर्दनात् ।
निःस्वभावत्वयोगात्मा परमानन्दरूपकम् ॥ (अ० क०, पृ० 211)

परवित्

स्वपरयोरद्वैतबोधात् परवित् । (अ० क०, पृ० 321)

पारमिताश्चतस्रः

उपाय-बल-प्रणिधि-ज्ञान-पारमिताश्चतस्रः । उक्तं च—"तस्याः सत्त्वार्थमृद्धिर्भवनिधनमजप्राप्तिरन्याश्चतस्रः" इति । अथ सत्त्वार्थमित्युपायः । ऋद्धिरिति प्रणिधिः । भवनिधनमिति बलम् । अजप्राप्तिरिति ज्ञानम् । (अ० क०, पृ० 216)

पारमिताः (दश)

उदकादिपूर्वकलोकोत्तराद्यभिषेकदानाद्दानम् । कमलकुलिशसंयोगे बोधिचित्तरक्षणात् शीलम् । न क्वचित् स्थिताः सर्वधर्मा इति सर्वधर्मनिर्विकल्पावगमक्षमणात् क्षान्तिः । महास्फुटीभावोद्योगाद् वीर्यम् । चतुर्थध्याननिमज्जनाद्ध्यानम् । प्रज्ञा दिव्यमुद्रा गुरुमुखैकलभ्या । उपायो हठयोगोऽपि समाध्यङ्गस्फुटीभावार्थम् ।............समाध्यङ्गस्फुटीभावेन एकक्षणाभिसम्बोधिक्षणोदये सर्वं स्वपरार्थनिष्पत्तिः प्रणिधिः । बलं महासुखसामर्थ्यम् । ज्ञानं मणिवरटकान्तःप्रवृत्तिविवृत्या उष्णीषचक्रपर्यन्तं महासुखज्ञानम् । (अ० क०, पृ० 221-222)

पीठानि

परपीठेति प्रज्ञोक्ता आत्मपीठमुपायकम् ।
अनयोरद्वयीभावो योगपीठ इति स्मृतम् ॥
तत्त्वपीठं तदुत्पन्नं तद्रहितं च यद् भवेत् ।
सहजेति समाख्यातं वाक्पथातीतगोचरम् ॥

अन्यत्र च—

[1]पीठं स्त्रीगुह्यपद्मं प्रभवति समये वज्रमेवोपपीठं
क्षेत्रं छन्दोहमेलापकचितिभुवनं तद्वदेवं समस्तम् ।
पीठं वामाङ्गपूर्वं ह्यपरमपि तथा दक्षिणं चोपपीठम्
एवं क्षेत्रादि सर्वं करचरणगताश्चाङ्गुलीर्जानुसीम्नः ॥ इति ।

(अ० क०, पृ० 308)

पुण्यम्

पुण्यं महाकरुणारागरञ्जिताचित्तचित्तेन समाध्यङ्गाभिमुखीकरणं सुखं (पुण्यम्) । उक्तं च—

न विरागात् परं पापं न पुण्यं सुखतः परम् ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन च्युतिसौख्यं विवर्जयेत् ॥

(अ० क०, पृ० 245)

प्रजापतिः

ज्ञानप्रबोधेन तुर्यातीतप्रभास्वरमयज्ञानबिम्बमयत्वेन सर्वजन्तूनामुत्पादनात् प्रजानां जन्तूनां पतिः प्रजापतिः । (अ० क०, पृ० 265)

प्रज्ञा

वैमल्यगतमहामुद्रा प्रज्ञा । (अ० क०, पृ० 319)

प्रज्ञोपायः

प्रज्ञा सर्वधर्माविकल्परूपा शून्यता । उक्तं चादिबुद्धे—

[2]त्यक्त्वेमां कर्ममुद्रां सकलुषहृदयां कल्पितां ज्ञानमुद्रां
सम्यक्सम्बोधिहेतोर्जिनवरजननीं भावयेद् दिव्यमुद्राम् ।
निर्लेपां निर्विकारां खसमहततमां व्यापिनीं योगगम्यां
कूटस्थां ज्ञानतेजां भवकलुषहरामादिबुद्धानुविद्धाम् ॥

इति सैव उपायः । (अ० क०, पृ० 186)

प्रत्यात्मवेद्यः

षष्ठो वज्रधरः कुमारीसुरतसुखवदनन्यवेद्यत्वात् प्रत्यात्मवेद्यः । उक्तं च—

वक्तुं न शक्यते सौख्यं कुमार्याः सुरतं विना ।
यौवने सुरतं प्राप्य स्वतो वेत्ति महासुखम् ॥
एवं न शक्यते वक्तुं समाधिरहितं सुखम् ।
समाधावक्षरं प्राप्ताः स्वतो विन्दन्ति योगिनः ॥ (अ० क०, पृ० 246)

---

1. का० त०, 3.166.
2. का० त० 4.199.

प्रत्याहारः

प्रत्याहारशब्देन त्रैधातुकबुद्धबिम्बदर्शनम् । कुण्डल्या सह योगतः । अत्रामृतकुण्डलीसंज्ञया सन्ध्याभाषान्ते वा स्वरित्युक्तो भगवता । (डा० जा० सं० र०, पृ० 5)

प्रमथः

महासुखशुक्रदान्तवशीकृतप्रादेशिकक्षणा(स्कन्धा)दिविघ्नगणत्वेन विघ्नाधिपत्वात् प्रमथः ।

(अ० क०, पृ० 319)

प्रमथेश्वरः

कायवाक्चित्तमुक्तिरूपत्र्यम्बकस्वभावत्वात् प्रमथेश्वरः । (अ० क०, पृ० 319)

प्रह्वकायः

प्रह्वकायः सहजनिमग्नकायवाक्चित्तः । (अ० क०, पृ० 192)

प्राणायामः

प्राणायामो नाम ललनावामदक्षिणमार्गनिरोधः । अयमेव वसन्तकालः । अवधूतीमध्यमाङ्गे प्राणवायोः समप्रवृत्तिरिति । तत्रानिलयोगेनावधूत्यां संचार इति । तस्य ॐकारेण उच्चा-(च्छ्वा)सः, आःकारेण निःश्वासः । ॐ हूँकारेण निरोधश्चन्द्ररविराहुस्वभावेन कुरुते योगी । इति प्राणायामाङ्गमुच्यते । (डा० जा० सं० र०, पृ० 6)

प्रीतिः

प्रीतिर्नाम सर्वभावेषु चित्तारोपणम् । (डा० जा० सं० र०, पृ० 6)

[इसके आगे का अंश 'धीः'. के अगले अंक में देखें]

———

चार बौद्ध कुलों की समयमुद्राएँ

—जनार्दन पाण्डेय—

['धीः' के अङ्क 1, 3, 4, 7, 9, में विविध मुद्राओं के लक्षण भिन्न-भिन्न ग्रन्थों से दिये गये हैं। प्रथम अङ्क में बताया गया है कि प्रत्येक देवता की भिन्न-भिन्न आराधनाओं में समयमुद्राएँ भी भिन्न-भिन्न होती हैं। इस अङ्क में बौद्धों के चार प्रसिद्ध कुलों—तथागतकुल, वज्रसत्त्वकुल, पद्मकुल और मणिकुल की समयमुद्राओं के लक्षण सर्वतथागततत्त्वसंग्रह से दिये जा रहे हैं।]

तथागतकुल की समयमुद्राएँ

रत्नवज्रा

रत्नवज्रा समाङ्गुष्ठतर्जनीमुखसन्धनात्।
सा एव मध्यमानामकनिष्ठा सुप्रसारिता॥

पताका

पताका तु समानामकनिष्ठाभ्यां समन्विता।
हासस्थानस्थिता चैव सा एव परिवर्तिता॥

वज्रकोशा

प्रसारितसमाङ्गुष्ठस्थिता कुञ्चिततर्जनी।
सा एव वज्रकोशा तु मध्यमा मुखसन्धिता॥

चक्रा

सा एव तु समानामकनिष्ठा चक्रसंज्ञिता।
निर्युक्ताङ्गुष्ठबन्धा तु प्रसारितमुखोत्थिता॥

वज्रमुष्टि

वज्रबन्धस्त्वधोदानात् स्वाञ्जलिश्चोर्ध्वदायिका।
समाङ्गुष्ठनिपीडा च सुप्रसारितलेपना॥
एकतर्जनिसंकोचा द्वयङ्गुष्ठग्रन्थिबन्धिता।
अङ्गुष्ठाग्रद्यकटा बन्धा वज्रमुष्ट्यग्रसन्धिता॥

—सर्वतथागततत्त्वसंग्रह, पृ० 28

वज्रसत्त्वकुल की समयमुद्राएँ

सत्त्वोष्णीषा

वज्रबन्धं दृढीकृत्य प्रविष्टाङ्गुष्ठसंचयम् ।
कुञ्चिताग्र्यासु गच्छन्तं सत्त्वोष्णीषेति संज्ञिता ॥

तेजोराशि

वज्रबन्धं समादाय समाङ्गुष्ठात्ममध्यमा ।
तेजोराशीति विख्याता तेजोराशेर्महात्मनः ।'

महाविद्योत्तमा

वज्रमुद्राद्विकं बद्ध्वा कनिष्ठाङ्गुष्ठसन्धितम् ।
गाढमङ्कुशबन्धेन महाविद्योत्तमस्य तु ॥

हृदया

महाविद्योत्तमामयीं मुद्रां बद्ध्वा सुयन्त्रिताम् ।
हृदयाङ्गुष्ठमुखानां तु बन्धनाद् हृदया स्मृता ।

चतुःपुष्पा

तामेवानाममध्याभिरङ्गुलीभिः सुयन्त्रिताम् ।
वज्ररत्नप्रयोगेण परिवर्त्य मुखस्थिताम् ॥
तामेवोत्तानसंस्थां स्वहृदये परिवर्त्यं वै ।
चतुःपुष्पा तु नामेन पद्मविद्योत्तमस्य तु ॥

वज्रकर्मप्रसाधिका

तामेव मूर्धादारभ्य भ्रमत्कायाग्रमण्डला ।
वज्रविश्वस्य मुद्रेयं वज्रकर्मप्रसाधिका ॥

सर्वसाधिका

सत्त्ववज्रां दृढीकृत्य कनिष्ठा वज्रसन्धिता ।
सर्वविद्धृदयस्यास्य मुद्रेयं सर्वसाधिका ॥

वज्रशूला

कनिष्ठाङ्गुष्ठबन्धे तु वाममध्याङ्गुलित्रिके ।
त्रिशूले मध्यशूलं तु वज्रमुद्रापरिग्रहम् ॥
वज्रविद्योत्तमस्येयं वज्रशूलेति कीर्तिता ।

—सर्वतथागततत्त्वसंग्रह, पृ० 94

पद्मकुल की समयमुद्राएँ

विश्वपद्मा

वज्राञ्जलिं समाधाय सममध्योत्थिता तथा ।
कनिष्ठाङ्गुष्ठविकचा विश्वपद्मेति कीर्तिता ॥

जटाबुद्धा

सा एवाङ्गुष्ठपर्यङ्का कुञ्चिताग्राग्रयविग्रहा ।
मध्यवज्रजटामूर्ध्नि जटाबुद्धेति कीर्तिता ॥

अमोघमुद्रा

वज्रबन्धं दृढीकृत्य समाङ्गुष्ठमधस्तनम् ।
तर्जनीद्वयसंकोचा समुद्गता समाधितः ॥
समाञ्जलिं समाधाय तर्जनी वज्रपीडिता ।
विकसिताङ्गुष्ठमुखयोर्मुद्राऽमोघेश्वरस्य तु ॥

पद्मबुद्धा

वज्रबन्धं दृढीकृत्य समुत्तानं तु बन्धयेत् ।
समाङ्गुष्ठकृता पद्मे पद्मबुद्धेति कीर्तिता ॥

साधुपद्मा

अङ्गुष्ठवज्राग्राभ्यामङ्कुशं खड्गमेव च ।
अन्त्यद्वयविकासा च मध्यानामाग्रकुड्मला ॥
समाञ्जलिं समाधाय वलिताङ्गुष्ठकुञ्चिता ।
तर्जन्या तर्जनीं गृह्याकर्षयेत् पद्मबाणया ॥
समाञ्जलिं तथोत्तानां बन्धयेत् साधुमुद्रया ।
साधुकारं प्रददाति साधुपद्मेति कीर्तिता ॥

पद्मभृकुटि

समाञ्जलिं दृढीकृत्य कुञ्चिताग्रया मुखस्थिता ।
कनिष्ठाभ्यां तु विकचा पद्मभृकुटिरुच्यते ॥

पद्मसूर्या

वज्रबन्धं दृढीकृत्य हृदये तु प्रसारयेत् ।
पद्मसूर्येति विख्याता सर्वाङ्गुलिसुमण्डला ॥

पद्मरत्नध्वजाग्री

समाञ्जलिं दृढीकृत्य तर्जनीभ्यां मणीकृता।
पद्मरत्नध्वजाग्री तु मूर्ध्नि बाहुप्रसारिता॥

पद्ममुष्टि

वज्रमुष्टिं द्विधाकृत्य कुञ्चयित्वा तु मध्यमे।
स्वाङ्गुष्ठपृष्ठनिहिते पद्ममुष्टिरुदाहृता॥

हयग्रीवा

वज्रधातुप्रयोगेण वज्राञ्जलिसमुत्थिता।
सर्वपूजाग्रयदेवीनां समयाग्र्यस्तु बन्धयेत्॥
वज्रबन्धं दृढीकृत्य सन्धयेत् तर्जनीद्वयम्।
संकोचात् पुरतः सन्धेद् हयग्रीवेति कीर्तिता॥

अमोघपाशा

पद्माञ्जलिं समाधाय तर्जनीग्रन्थिबन्धना।
अमोघपाशमुद्रेयं तर्जन्यङ्गुष्ठसङ्कुला॥

—सर्वतथागततत्त्वसंग्रह, पृ० 116,117

(पद्मकुल की गुह्यमहामुद्राओं के लिये उक्त ग्रन्थ के पृष्ठ 122-124 भी देखें)

मणिकुल की समयमुद्राएँ

सर्वार्थसिद्धिदा

वज्रबन्धं दृढीकृत्य तर्जनीभ्यां मणीकृता।
प्रसारिताङ्गुष्ठमुखा हृदि सर्वार्थसिद्धिदा॥

मणिरत्नप्रदा

वज्रबन्धं समाधाय मध्यमा मणियोजिता।
मुद्रेयं मणिचिह्नस्य मणिरत्नप्रदायिका॥

मणिरत्नाङ्कुशी

सा एवाङ्कुशयोगेन तर्जनीभ्यां समिन्धिता।
सर्वार्थकर्षणी मुद्रा मणिरत्नाङ्कुशी स्मृता॥

बाणाकर्षणी

सा एव वलितां कृत्वा तर्जन्या तर्जनीग्रहा।
बाणाकर्षणयोगेन कर्षयन् रागयेज्जगत्॥

साधुकारा

सा एव साधुकारा तु तर्जन्यङ्गुष्ठयोजिता।
सा एवाङ्गुष्ठसन्धानसंच्छन्नाग्रयाङ्गुली तथा॥

मणिवृष्टिः

अङ्गुष्ठान्तरयोश्चैव पुनरग्रधा मुखे क्षणात्।
मणिदृष्टिस्तु सा ख्याता दृष्टयर्थानां प्रहारिका॥

मणिकोशा

मणिकोशा हरेदर्थान् जगतां विक्रमेण तु।
वज्रबन्धाग्रचक्रा च समाङ्गुष्ठप्रवेशिता॥

मणिबन्धा

मणिबन्धेति विख्याता रक्षाकवचिनी स्मृता।
सा एव सर्वसिद्धयर्था यक्षयोगा मुखस्थिता॥

मणिदंष्ट्रा

मणिदंष्ट्रेति विख्याता भयात् सर्वार्थहारिणी।
वज्रबन्धं दृढीकृत्य कुञ्चिताग्रया सुयन्त्रिता॥

मणिमुष्टिः

संगृह्याङ्गुष्ठयोः सम्यग् मणिमुष्टिस्तु सिद्धिता।
पूजाग्रसमयानां तु वज्रधातुप्रयोगतः॥

—सर्वतथागततत्त्वसंग्रह, पृ० 145-147

इन मुद्राओं में कामनाभेद से कुछ हेरफेर भी होते हैं, उन्हें उक्त ग्रन्थ में ही देखें।

———

सर्वतथागततत्त्वसंग्रह : श्लोकार्धानुक्रमणी

—ठिनलेराम शाशनी—

['धीः' के पिछले अंकों में अनुसन्धाताओं की सुविधा के लिये सेकोद्देशटीका, अद्वयवज्रसंग्रह, साधनमाला, कालचक्र आदि ग्रन्थों के परिशिष्टों का प्रकाशन किया गया था। अब इस अंक में सर्वतथागततत्त्वसंग्रह की श्लोकार्धानुक्रमणी दी जा रही है।

सर्वतथागततत्त्वसंग्रह का सम्पादन विस्तृत भूमिका सहित डा० लोकेशचन्द्र ने किया है तथा मोतीलाल बनारसीदास द्वारा सन् 1987 में प्रकाशित हुआ है। इस ग्रन्थ का अनुवाद चीनी तथा तिब्बती भाषाओं में हुआ है। बौद्ध तन्त्रों के चार विभागों में यह योगतन्त्र के अन्तर्गत है। यह योगतन्त्र का मूल ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ के चार भाग हैं। प्रत्येक भाग को आश्रय करके आचार्यों ने टीका ग्रन्थों की रचना की है। इससे ऐसा जान पड़ता है कि प्रत्येक भाग अपने में पूर्ण है। आचार्य पद्मवज्र द्वारा रचित "तन्त्रार्थावतारव्याख्यान" (तो० 2502) नामक टीका ग्रन्थ में उन्होंने तत्त्वसंग्रह में वर्णित 37 तत्त्वों के नाम गिनाये हैं। इससे तत्त्वसंग्रह नाम की सार्थकता प्रतीत होती है।]

श्लोकार्धानुक्रमणी

—o—

दुर्लभ ग्रन्थों की आधार सामग्री

—डॉ० ठाकुरसेन नेगी—

[इस शीर्षक के अन्तर्गत 'धीः' के प्रथम आठ अंकों में लगभग 271 महत्त्वपूर्ण हस्तलिखित तन्त्र-ग्रन्थों की आधार सामग्री की सूचना दी जा चुकी थी, जो अब दुर्लभ ग्रन्थों की आधार सामग्री (प्रथम भाग) शीर्षक से ग्रन्थ रूप में प्रकाशित हो चुकी है। 'धीः' के नवें अंक में इस शीर्षक से ही अन्य 85 महत्त्वपूर्ण हस्तलिखित ग्रन्थों की आधार सामग्री की सूचना दी गई थी। संप्रति एशिया, यूरोप एवं अमेरिका के विभिन्न सुदूरवर्ती पुस्तक संग्रहों में संरक्षित लगभग 320 अन्य महत्त्वपूर्ण हस्तलिखित बौद्ध स्तोत्र-ग्रन्थों की आधार सामग्री प्रस्तुत है, जो 2-3 अंकों में पूरी होगी।]

Title	Author	Institution	Ms. No.
अचिन्त्यस्तव सटीक Acintyastava Saṭika No. 1128 (ka. 76b⁷-79a²) Bsam-gyis-mi-khyag-par-bstod-pa A. klu-Sgrub T. Tilaka, Pa-tshab ñi-ma-grags.	नागार्जुन Nāgārjuna	BAK SMTUL	Reel No. E 370/21 340-I-C
अम्बुधारास्तव Ambudhārāstava		BAK	4/1033
अरुणवरुणस्तोत्र Aruṇavaruṇastotra		MCBMBLJ	CH 122-G
अष्टमङ्गलगाथास्तोत्र Aṣṭamaṅgala Gāthā Stotra		,, ,,	CH 214-B DH 207
अष्टमङ्गलस्तव Aṣṭamaṅgalastava		BAK ,,	1/1696 4/2089
अष्टमङ्गलस्तवस्तोत्र Aṣṭamaṅgalastava Stotra		MCBMBLJ	CH 199
अष्टमहास्थानचैत्यवन्दनास्तोत्र Aṣṭamahāsthānacaityavandanāstotra No. 1168 [ka. 240b⁶-241a⁵] Gnas Chen-Po brgyad-kyi mchod- rten-la Phyag-ḥtshal-bahi-bstod-pa. Taisho No. 1684, Nj, No. 1071. A. Śriharṣadeva. T. Śri Jñānamitra, Yon-tan dpal.		IASWR NEPAL-II	MBB-II-135 P. 237

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	Dev.	15	Comp.	
Paper		(17a4-33a2)		with the Akāri-ṭikā
NP	N	9-10		M. Film CIHTS
,,	,,	34		
,,	,,	Folding Book		
,,	,,	,,		
,,	,,	,,	Comp.	
,,	,,	3 (37-39)		M. Film CIHTS
,,	,,	4 (1b-4a)		
,,	,,	23	,,	M. Fische CIHTS
,,	,,	13		

Title	Author	Institution	Ms. No.
अष्टमहाविद्यास्तोत्र Aṣṭamahāvidyāstotra		RAK	1/1697 $\frac{2}{14}$
अष्टमातृकास्तुति Aṣṭamātṛkāstuti		,,	4/346
अष्टमातृकास्तोत्र Aṣṭamātṛkāstotra		,,	Reel No. H 381/11
		,,	3/360
		,,	,,
		,,	3/589
अष्टमातृकानवग्रहगणेशमहाकालमहाभैरवीस्तोत्र Aṣṭamātṛkānavagrahagaṇeśamahākālamahābhairavīstotra		SMTUL	386-11
अष्टलोकपालस्तोत्र Aṣṭalokapālastotra		RAK	3/360
		,,	3/589
अष्टविधिसत्वनामस्तोत्र Aṣṭavidhisattvanāmastotra		,,	Reel No. E 126/5
अष्टश्मशानस्तोत्र Aṣṭaśmaśānastotra		,,	,, ,, E 365/8

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
PL	Guptākṣara	1	Comp.	
NP	N	66	,,	
,,	Dev.	—	Incomp.	
,,	,,	(136a-136b)	Comp.	M. Film CIHTS
,,	,,	(143b-144a)	,,	,, ,,
,,		257-258	,,	,, ,,
IP	,,	($35a^1$-$40b^1$)		
NP	,,	142b-143a		M. Film CIHTS
,,	N	257a-257b		,, ,,
,,	,,	4	Comp.	
,,	Dev.	3	,,	

Title	Author	Institution	Ms. No.
अष्टसाहस्रिकाप्रज्ञापारमिता एकविंशतिस्तोत्र Aṣṭasāhasrikāprajñāpāramitā Ekaviṁśatistotra		MCBMBLJ	A 180
आदिद्वादशकस्तोत्र Ādidvādaśakastotra		BAK	3/360
आर्यतारा अष्टोत्तरशतनामस्तोत्र Āryatārā Aṣṭottaraśatanāmastotra		,,	Reel No. H 37/8
		,,	4/1616
आर्यतारा एकविंशतिस्तोत्र Āryatārā Ekaviṁśatistotra		,,	5/128
		,,	5/128
		,,	5/128
		,,	5/128
		,,	Reel No. E 193/16
		MCBMBLJ	CH 204
		,,	CH 495-A
		,,	KA 16-S
		,,	DH 136
आर्यतारा नमस्कारैकविंशतिस्तोत्र Āryatārānamaskāraikaviṁśatistotra		BAK	5/131
		MCBMBLJ	CA 11-8
		,,	CH 136
		,,	CH 295
		,,	CA 74-12

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	Dev.	3 (1b-3b)		
,,	,,	2(10b-11b)		M. Film CIHTS
,,	,,	16	Comp.	
,,	Rañjanā	6	,,	
,,	N	Folding Book	,,	
,,	,,	24	,,	
,,	,,	37	,,	
,,	,,	Folding Book	,,	
,,	,,	9	,,	
,,	,,	27		
,,	,,	17		
,,	,,	7 (21b-27b)		
,,	,,	5 (9a-13b)		
,,	,,	9	Comp.	
,,	,,	3 (1b-3b)	,,	NS 906
,,	,,	3 (1b-3b)	,,	
,,	,,	4 (1a-5a)	Incomp.	Missing F. 2.
,,	,,	4 (1b-4b)		

Title	Author	Institution	Ms. No.
आर्यतारास्तोत्र		BAK	3/360
Āryatārāstotra		,,	3/360
No. 1693 (Śa. 49b[6]-51a[b])		,,	5/118
Ḥphags-ma sgrol-ma-la bstod-pa		,,	Reel No. E 377/11
A. Ñima-sbas-pa.		,,	,, E 127/29
आर्यतारा बौद्धस्तोत्राणि		,,	5
Āryatārā Bauddha Stotrāṇi			
आर्यपद्मपाणिलोकेश्वर स्तोत्र		,,	3/589
Āryapadmapāṇilokeśvarastotra			
आर्यस्तव			
Āryastava		,,	Reel No. I. 45/1[a]
आर्यावलोकितेश्वर-अनन्तनागराजस्तवस्तोत्र		MCBMBLJ	CH 130
Āryāvalokiteśvara Anantanāgarāja-		,,	CH 214-0
stavastotra		,,	CH 404
		SMTUL	164-13
		,,	258-12
		,,	276-16
		CAMBRIDGE	1332
आर्यावलोकितेश्वरकरुणास्तवस्तोत्र	वन्धवाचार्य	SMTUL	164-4
Āryāvalokiteśvarakaruṇāstava-	Vandhavācārya	,,	276-24
stotra		CAMBRIDGE	1333
		,,	1379
		MCBMBLJ	CH 20
		,,	CH 26-B
		,,	CH 100-A
		,,	CH 229
		BAK	4/1033
		,,	4/2089

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	Dev.	42b		M. Film CIHTS
,,	,,	(42b-43a)		,, ,,
,,	N	6	Comp.	
,,	Dev.	20	,,	
,,	N	10	,,	
,,	,,	24	Comp.	
,,	,,	(255a)		M. Film CIHTS
,,	Dev.	4	Incomp.	
,,	N	40		
,,	,,	Folding Book		NS. 962
,,	,,	30		
Paper	,,	(19, 9-17)		
,,	,,	(48, 3-50, 3)		
,,	,,	(29, 5-31, 2)		
,,		Folding Book		
Paper	,,	(7, 10-9, 16)		
,,	,,	(78, 4-85, 1)		
,,	,,	(48a-48b)		A. D. 1797
,,		(25 stanzas) ending		
NP	,,	28	Incomp.	With Newāri tran.
,,	,,	Folding Book		NS. 823
,,	,,	34(1a-34b)		
,,	,,	82		
,,	,,	3 (31-33)		M. Film CIHTS
,,	,,	5 (92-96)		,, ,,

Title	Author	Institution	Ms. No.
आर्यावलोकितेश्वर-त्रिगुणात्मकस्तोत्र Āryāvalokiteśvaratriguṇātmaka-stotra.	जयप्रतापमल्ल Jayapratāpa-malla	MCBMBLJ	CH 214-J
		,,	DH 224
		BAK	4/1033
आर्यावलोकितेश्वरमणिकमालास्तोत्र Āryāvalokiteśvaramaṇikamālā-stotra		,,	4/1033
		,,	,,
आर्यावलोकितेश्वर रक्षकस्तव Āryāvalokiteśvararakṣakastava		MCBMBLJ	CH 226-B
		,,	
आर्यावलोकितेश्वररञ्जकास्तव Āryāvalokiteśvararañjakāstava		SMTUL	164-18
आर्यावलोकितेश्वररत्नमालास्तवस्तोत्र Āryāvalokiteśvararatnamālāstava stotra		MCBMBLJ	CH 183-C
		,,	CH 406
		SMTUL	164-3
		,,	276-41
		BAK	4/1033
		,,	4/2089
आर्यावलोकितेश्वररूपस्तवस्तोत्र Āryāvalokiteśvararūpastavastotra		MCBMBLJ	CH 100-B
		SMTUL	164-5
		,,	276-23
		CAMBRIDGE	1322
		,,	1614
		BAK	4/2089

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	N	Folding Book		NS 962
,,	,,	98		
,,	,,	4 (44-47)		M. Film CIHTS
,,	,,	(12-14)		,, ,,
,,	,,	(55-57)		,, ,,
,,	,,	(69)		42 other stotras,
,,	,,	Folding Book		
Paper	,,	(22, 15-23, 15)		
NP	,,	Folding Book		
,,	,,	12		
,,	,,	(5, 4-7, 10)		
,,	,,	(129, 2-135, 5)		
,,	,,	4 (35-38)	Incomp.	M. Film CIHTS
,,	,,	5 (118-122)		,, ,,
,,	,,	34		With Newari translation. NS. 946
Paper	,,	(9, 16-11, 14)		
,,	,,	(73, 3-78, 4)		
,,		Folding Book		
,,		(6b)		
NP	,,	4 (89-92)		M. Film CIHTS

Title	Author	Institution	Ms. No.
आर्यावलोकितेश्वरवन्दनास्तव Āryāvalokiteśvaravandanāstava		SMTUL RAK	164-16 4/1033
आर्यावलोकितेश्वरवन्दनास्तोत्र Āryāvalokiteśvaravandanāstotra		MCBMBLJ RAK	CH 214-Q 4/2089
आर्यावलोकितेश्वरवेदनास्तोत्र Āryāvalokiteśvaravedanāstotra		MCBMBLJ	CH 214-L
आर्यावलोकितेश्वरसप्ताक्षरस्तोत्र Āryāvalokiteśvarasaptākṣarastotra		SMTUL	164-29
आर्यावलोकितेश्वरस्तवराज Āryāvalokiteśvarastavarāja		,, ,, RAK RAS	164-12 276-38 4/2089 30-III
आर्यावलोकितेश्वरस्तव Āryāvalokiteśvarastava		RAK ,, ,,	5/127 Reel No. E 374/15 4/1033
आर्यावलोकितेश्वरस्तवस्तोत्र Āryāvalokiteśvarastavastotra		SMTUL	276-4

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	N	(21, 4-22, 7)		
		2 (17-18)		M. Film CIHTS
,,	,,	Folding Book		NS 962
,,	,,	2 (123-124)		M. Film CIHTS
,,	,,	Folding Book		NS 962
Paper	,,	(44, 4-15)		
,,	,,	(17, 19-19, 9)		
,,	,,	(115, 5-119, 5)		
NP	,,	2 (111-112)		M. Film CIHTS
,,	,,	Folding Book	Comp.	
,,	Dev.	6	,,	
,,	N	2 (21-22)		M. Film, CIHTS
,,	,,	(9, 2-11, 2)		

Title	Author	Institution	MS. No.
आर्यविलोकितेश्वरस्तोत्र		BAK	1/1696
Āryāvalokiteśvarastotra		,,	1/1696
		,,	Reel No. E 487/27
		,,	,, ,, E 259/21
		,,	,, ,, E 14/9
		,,	4/1616
		,,	3/360
	यमराज	,,	,,
	Yamarāja		
	वलिराज	,,	,,
	Valirājā		
	महेश्वर	,,	,,
	Maheśvara		
	उमादेवी	,,	,,
	Umādevi	,,	4/1033
	वासुकिनाग	,,	4/2089
	Vāsukināga	,,	,,
	अनन्तनाग		
	Anantanāga	MCBMBLJ	CH 2
		,	CH 69
		,,	CH 122-J
		,,	CH 221
Peking Ed. No. 3546	चरपतिपाद	SMTUL	164-2
No 2726 (Nu. $93b^{5}$-95 a^{2})	Carapatipāda		276-22
Ḥphags-pa spyan-ras-gzigs	,,	CAMBRIDGE	1332
dbaṅ-phyug-la tsarpa-ṭis	,,	,,	1614
bstod-pa.	,,	MCBMBLJ	CH 183-B
T. Śrīvanaratna, Chos-ḥkhor-	,,	,,	CH 18-B
lo-tsā-ba.	,,	,,	CH 26-C
R. Rgya-mtsho,	,,	,,	CH 266-B
	,,	,,	CH 236
	,,	,,	CH 100-C
	,,	BAK	4/2089

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	N	Folding Book		
,,	,,	,,		
,,	,,	6	Comp.	
,,	,,	7	,,	
,,	,,	8	,,	
PL	Rañjanā	6	,,	
NP	Dev.	(22b-23a)		M. Film CIHTS
,,	,,	(77a-78a)		,, ,,
,,	,,	(78a-78b)		,, ,,
,,	,,	1 (78b)		,, ,,
,,	,,	1 (79a)		,, ,,
,,	N	4 (47-50)		,, ,,
,,	,,	2 (51-52)		,, ,,
,,	,,	(62a)		,, ,,
,,	,,	22		
,,	,,	98		
,,	,,	Folding Book		
,,	,,	60		
,,	,,	(3, 6-5, 4)		
,,	,,	([8]-73, 3)		
Paper		Folding Book		
,,	,,	(1-3a)		
NP	,,	Folding Book		
,,	,,	,, 49		
,,	,,	,, 44		
,,	,,	,, 16		
,,	,,	,, 20		
,,	,,	,,		
,,	,,	4 (86-89)		

Title	Author	Institution	Ms. No.
आर्यावलोकितेश्वरस्तोत्र	चन्द्रकान्तभिक्षुणी	MCBMBLJ	183-D
Ārayāvalokiteśvarastotra	Candrakānta Bhikṣuṇi	SMTUL	164-14
	,,	,,	276-30
	,,	BAK	4/1033
	वासुकिनागराज Vāsukināgarāja	SMTUL	276-20
	,,	MCBMBLJ	CH 195-B
	श्रीवीरकुश Śrī Vīrakuśa	,,	KA 16-R
आर्यावलोकितेश्वरस्वरूपस्तोत्र Āryāvalokiteśvarasvarūpastotra		BAK	4/1033
उग्रतारास्तोत्रशतक Ugratārāstotraśataka		,,	1/120

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	N	Folding Book		
Paper	,,	(19, 17-20, 15)		
,,	,,	(95, 1-97, 1)		
NP	,,	2 (5-6)		M. Film CIHTS
Paper	,,	(43, 5-45, 3)		
NP	,,	Folding Book		
,,	,,	11 (1b-11b)		
,,	,,	(15a)		M. Film CIHTS
,,	,,	8		

Title	Author	Institution	Ms. No.
उग्रतारास्तोत्र Ugratārāstotra		SMTUL	418-70
		,,	420-V-5
		,,	201-40
		BAK	3/360
उग्रतारास्नानस्तोत्र Ugratārāsnānastotra		,,	1/129
उग्रवाराहीस्तव Ugravārāhīstava		,,	5/2001
उमामहेशकृतस्तव Umāmaheśakṛtastava		SMTUL	202-88
		,,	418-36-a
एकजटिभट्टारिकानामस्तोत्र Ekajaṭi Bhaṭṭārikānāmastotra		CAMBRIDGE	1547
		SMTUL	258-9
		MCBMBLJ	CH 188
		,,	CH 122-k
		BAK	5/1696
एकजटिस्तोत्र Ekajaṭistotra		JBORS	XXXVI-163
		SMTUL	420-IX-3
		BAK	4/1033
		,,	1/799
		MCBMBLJ	CH 122-K

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
Paper	N	$(144a^{3}\text{-}145a^{1})$		
,,	,,	$(9a^{1}\text{-}10a^{1})$		
,,	,,	$(153a^{6}\text{-}154a^{2})$		
NP	Dev.	(152b-154b)		M. Film CIHTS
,,	,,	Folding Book		
,,	,,	6		
Paper		$(403b^{4}\text{-}404a^{2})$		
,,		$(86b^{5}\text{-}87a^{4})$		
,,		18		XVIIIth Cent.
,,		(41, 1-44, 4)		
NP	N	3(1b-3b)		
,,	,,	Folding Book		
,,	,,	,,		
Paper	Dev.	6	Comp.	
NP	N	$(3b^{1}\text{-}5b^{2})$		
,,	,,	12	,,	M. Film CIHTS
,,	,,	18	,,	
,,	,,	Folding Book		

Title	Author	Institution	MS. No.
एकजटाध्यानस्तोत्र Ekajaṭādhyānastotra		RAK	3/360
कथास्तोत्र Kathā Stotra		,,	Reel No. H. 19/12
कमलाकरसर्वतथागतस्तवस्तोत्र Kamalākarasarvatathāgata- stavastotra		,, SMTUL ,,	3/360 202-99 418-83
कमलाकरसर्वतथागतस्तुति Kamalākarasarvatathāgatastuti		RAK	3/589
करवीरचण्डमहारोषणस्तोत्र Karaviracaṇḍamahāroṣaṇastotra		MCBMBLJ	DH 20
करुणामयस्तोत्र Karuṇāmayastotra		RAK ,,	1/1696 3/360
कल्पान्तिकस्तोत्र Kalpāntikastotra		,,	4/2089

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	Dev.	(151b-152b)		M. Film CIHTS
,,	N	6	Comp.	
,,	Dev.	(147b-150a)		M. Film CIHTS
Paper	N	($411b^{1}$-$413b^{6}$)		
,,	,,	($158b^{5}$-$161a^{4}$)		
NP	,,	(269-271)		M. Film CIHTS
,,	,,	4 (1b-4a)		
,,	,,	Folding Book		
,,	Dev.	133a		M. Film CIHTS
,,	N	129a	Incomp.	

Title	Author	Institution	Ms. No.
कल्याणत्रिंशिकास्तोत्र Kalyāṇatriṁśikāstotra		BAK	3/360
कल्याणपञ्चविंशतिस्तोत्र Kalyāṇapañcaviṁśatistotra		,,	3/360
काकपरीक्षा, श्वानपरीक्षा आदौ कर्मप्रशंसा दिव्यस्तोत्र Kākaparīkṣā, Śvānaparīkṣā ādaukarmapraśaṁsā divyastotra		MCBMBLJ	CH 521
कायूत्तरस्तोत्र Kāyūttarastotra		BAK	4/2089
कालिकास्तव Kālikāstava		SMTUL	418-139
कालीस्तोत्र Kālīstotra		MCBMBLJ	KA 16-C
कुलिशेश्वरस्तोत्र (वज्रडाकार्णवतन्त्र) Kuliśeśvarastotra (Vajraḍākārṇavatantra)		BAK MCBMBLJ	4/918 A 162

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	Dev.	(32a-33a)		M. Film CIHTS
,,	,,	(49b-52b)		,, ,,
,,	N	42		
,,		(49b)		
Paper		(248b4-249b5)		
NP		3 (1b-3a)		
,,	,,	21	Comp.	
,,	,,	11	Incomp.	(F. 1, 7, 8, 11, 13-18 & 21 only)

Title	Author	Institution	Ms. No.
कोलमुखीयमहातन्त्रोक्त वज्रवाराहीद्वादशनामस्तोत्र चिन्तार्थदंश (योगसिद्धान्ततन्त्र) Kolamukhiyamahātantrokta Vajravārāhidvādaśanāma stotra Cintārthadaṁśa (Yogasiddhāntatantra)		MCBMBLJ	A 91-1
गणपतिस्तोत्र Gaṇapatistotra		BAK	4/2089
		SMTUL	199-16
		CAMBRIDGE	1679-II
गणपतिहृदयस्तोत्र Gaṇapatihṛdayastotra		BAK	Reel No E 356/18
गण्डीस्तव Gaṇḍistava		,,	3/589
गणेशस्तोत्र Gaṇeśastotra		,,	3/360
		MCBMBLJ	KA 16-M
गीतस्तोत्रादिसंग्रह Gītastotrādisaṁgraha		BAK	3/659

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	N	10 (1b-10b)	Comp.	
,,	,,	1 (32a-b)		M. Film CIHTS
Paper	,,	($134a^1$-$135a^2$)		
,,		20		XV-XVIth Cent.
NP	Dev.	5	Comp.	
,,	N	332-334		M. Film CIHTS
,,	Dev.	(49b-52a)		,, ,,
,,	N	5 (1a-5a)		
,,	Dev.	65		

Title	Author	Institution	Ms. No.
गुरुरत्नत्रयस्तोत्र Gururatnatrayastotra		RAK	3/360
गुह्येश्वरीस्तोत्र Guhyeśvarīstotra	मञ्जुश्री Mañjuśrī	,, MCBMBLJ ,,	3/360 CH 469 KA 16 Q
चक्रसंवरदेवहेरुकस्तुति Cakrasaṁvaradevaherukastuti.		MCBMBLJ	CA 25-3
चक्रसंवरविशुद्धिस्तोत्र Cakrasaṁvaraviśuddhistotra		RAK MCBMBLJ	Reel No.E.698/13 KA 16-W
चण्डमहारोषणस्तोत्र Caṇḍamahāroṣaṇastotra		RAK	Reel No. E. 699/1
चण्डमहारोषणक्रमोदयस्तोत्र Caṇḍamahāroṣaṇakramodayastotra		,, SMTUL	Reel No. E.274/3 420-VI-2
चतुर्भुजमहाकालस्तोत्र Caturbhujamahākālastotra		RAK	3/360

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	Dev.	(4a)		M. Film CIHTS
,,	,,	(28b-29a)		,, ,,
,,	,,	Folding Book, 10		
,,	N	22 (1b-22a)		
,,	,,	12 (25-36b)		Missing F. 1-24.
,,	,,	3		
,,	,,	3 (1b-3a)		
,,	,,	8	Comp.	
,,	,,	1	,,	
Paper		(6a⁴-6b end)	,,	
NP	Dev.	(147a)		M. Film CIHTS

Title	Author	Institution	Ms. No.
चतुःषष्टियोगिनीस्तवः Catuḥṣaṣṭiyoginīstava		BAK	3/589
चन्द्रद्वादशनामस्तव Candradvādaśanāmastava		SMTUL	418-92
चन्द्रिकास्तव Candrikāstava		MCBMBLJ	CH 201-A
चरणदर्शनाभिलाषस्तोत्र Caraṇadarśanābhilāṣastotra		CAMBRIDGE	1614
चरपटिस्तव Carapaṭistava		BAK	Reel No. H 382/4
चिन्तामणिस्तोत्रटीका Cintāmaṇistotraṭīkā	शाक्यबुद्धि Śākyabuddhi	,, ,, GOS	4/122 5/133 13277
चैत्यवन्दनास्तवस्तोत्र Caityavandanāstavastotra		MCBMBLJ	DH 217-A

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	N	(254a)		M. Film CIHTS
Paper	,,	($164a^6$-b^2)		
NP	,,	Folding Book		NS. 875
Paper		(8b)		
NP	,,	21	Incomp.	
PL	Maithili	39	Comp.	M. Film CIHTS
NP	Dev.	15	,,	,, ,,
Paper	,,	28	,,	Zerox Copy ,,
NP	N	15		

Title	Author	Institution	Ms. No.
चैत्यवर्णनगीतस्तोत्र Caityavarṇanagītastotra		RAK	4/1032
चैत्यवर्णनस्तव Caityavarṇanastava		SMTUL	164-9
छ्वस्कामिनी एकविंशतिस्तोत्र Chvaskāmini Ekaviṁśatistotra		MCBMBLJ	A 184
		,,	CH 112
		,,	CH 122-M
		,,	CH 496
		,,	DH 143
छ्वस्कामिनीदेवीपञ्चविंशतिस्तुतिस्तोत्र Chvaskāminīdevīpañcaviṁśati-stutistotra		,,	A 182
छ्वस्कामिनीदेवीस्तुति Chvaskāminīdevīstuti		,,	A 166
छ्वस्कामिनीदेवीस्तोत्र Chvaskāminīdevīstotra		MCBMBLJ	DH 253
		,,	A 168
		RAK	4/1382
जगद्गुरुपञ्चाक्षरस्तोत्र Jagadgurupañcākṣara stotra		SMTUL	164-35

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	N	Folding Book		
Paper		(15, 9-16, 8)		
NP	Dev.	4 (1b-4b)		
,,	N	6 (1b-6b)		
,,	,,	5 (148-152)		Written in Gold.
,,	,,	6 (1b-6b)		NS. 1007
,,	,,	7 (1b-7b)		
,,	Dev.	5 (1b-5b)		
,,	N	6 (1b-6b)		
,,	,,	52 (1b-52b)		
,,	Dev.	4 (1b-4b)		
,,	N	Folding Book		
Paper	,,	(48, 14-19, 9)		

Title	Author	Institution	Ms. No.
जगन्मोहनस्तोत्र Jaganmohanastotra		SMTUL	276-17
जपमालास्तोत्र Japamālāstotra		MCBMBLJ	CA 34-4
तत्त्वज्ञानसमाधिवज्रदेवीस्तुति Tattvajñānasamādhivajradevīstuti		,,	CH 269-C
तथागतस्तोत्र Tathāgatastotra		BAK	3/360
		,,	,,
तारादेव्या नमस्कारैकविंशतिस्तोत्र Tārādevyā Namaskāraikaviṁśatistotra		SMTUL	154, 201-35
No. 1688 (Śa. 25 b6-35 a1)			
Bcom-ldan-ḥdas-ma sgrol-ma-		,,	155, 418-86
la bstod-pa ñi-śu-rtsa-gcig-		,,	199-24
paḥi sgrub-thabs.		,,	420-XX-2
A. Ñi-ma Sbas-pa.		,,	418-162
T. Śākyaśrībhadra (K)		RAS	32
Byams-paḥi dpal.			
Taisho No. 1108 A.			
तारानामस्तोत्र Tārānāmastotra		BAK	Reel No. E. 355/27
		,,	,, E. 298/32
		IASWB	MBB-II-63

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
Paper		(31, 2-33, 5)		
NP	N	1		
,,	,,	Folding Book		NS. 714
,,	Dev.	(4b)		M. Film CIHTS
,,	,,	(53b-54a)		,, ,,
Paper		($111b^4$-$113a^6$)		
,,		($161b^2$-$163a^2$)		
,,		($176a^1$-$179a^2$)		
,,		(1-10)		1-10, Verse only
,,		($269a^2$-$270a^7$)		
,,		4		
NP	N	4	Comp.	
,,	,,	8	,,	
,,		16	,,	M. Film CIHTS

Title	Author	Institution	Ms. No.
त्रियोगिनीनमस्कारस्तव Triyoginīnamaskārastava		BAK SMTUL	3/589 384-II
त्रिलोकनाथस्तोत्र Trilokanāthastotra		MCBMBLJ	CH 183-E
त्वरितास्तोत्र Tvaritāstotra		BAK	4/304
दशदिक्पालस्तोत्र Daśadikpālastotra		,,	3/360
दशदिग्लोकपालस्तवस्तोत्र Daśadiglokapālastavastotra		MCBMBLJ	CH 200-D
दशबलस्तव Daśabalastava		,,	CH 122-A
		BAK MCBMBLJ	4/2089 CH 183-A
दशबलस्तवस्तोत्र Daśabalastavastotra	हर्षदेव Harṣadeva	SMTUL MCBMBLJ	164 CH 214-E

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	N	(297a)		M. Film CIHTS
Paper		$(14a^2-5)$		
NP	,,	Folding Book		
PL	Bhujimol	3	Comp.	
NP	Dev.	(186b-187a)		M. Film CIHTS
,,	N	Folding Book		
,,	,,	,,		
,,	,,	(83-86)		M. Film CIHTS
,,	,,	Folding Book		
Paper	,,	49		Consisting of 24
NP	,,	Folding Book		Stotras, NS. 962.

Title	Author	Institution	Ms. No.
दशबलस्तोत्र Daśabalastotra		BAK	5/1696
		,,	Reel No. I. 14/1
		SMTUL	258-1
		,,	163
दिवंग(गम्ब)रस्तोत्र Divaṁga(gamba)rastotra		BAK	Reel No. E. 18/4
दीपङ्करस्तोत्र Dīpaṅkarastotra		,,	3/360
		,,	,,
		,,	,,
		,,	4/2089
देवदेवीस्तोत्र Devadevīstotra		MCBMBLJ	CH 201-E
		,,	CH 288-B
धर्मगण्डीस्तोत्र Dharmagaṇḍīstotra		BAK	3/360
		,,	3/589
		IASWR	MBB-II-6
		MCBMBLJ	CA 5-5
धर्मधातुकीलीस्तवस्तोत्र Dharmadhātukīlīstavastotra		,,	CH 200-A
धर्मधातुगीतस्तोत्र Dharmadhātugītastotra		,,	CH 214-F
		BAK	4/1033
		,,	,,

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	N	Folding Book	Comp.	
,,	Dev.	8	,,	
Paper	N	28	,,	(14 Other Stotra Collection)
,,	,,	22	,,	(Consisting of 24 Stotras)
NP	,,	15	,,	
,,	Dev.	(4b)		M. Film CIHTS
,,	,,	(5a)		,, ,,
,,	,,	(189b)		,, ,,
,,	N	(106-107)		,, ,,
,,	,,	Folding Book		
,,	,,	,,		
,,	Dev.	(99b-104b)		M. Film CIHTS
,,	,,	(330a-332a)	Comp.	,, ,,
,,	,,	3	,,	
,,	,,	4(2-5)	Incomp.	Missing F. 1 & 6
,,	N	Folding Book		
,,	,,	,,		NS. 962
,,	,,	(10-11)		M. Film CIHTS
,,	,,	(50-51)		,, ,,

Title	Author	Institution	Ms. No.
धर्मधातुवागीश्वरस्तवस्तोत्र Dharmadhātuvāgiśvarastavastotra		MCBMBLJ	CH 214-G
		RAK	3/360
		SMTUL	258-2
		,,	194-9
धर्मधातुस्तव Dharmadhātustava		IASWR	MBB-II-292
		SMTUL	164-23
धर्मधातुस्तवस्तोत्र Dharmadhātustavastotra		MCBMBLJ	CH 214-H
		,,	CH 200-A
		RAK	Reel No. I. 14/6
		,,	3/360
		,,	,,
धर्मरत्नस्तोत्र Dharmaratnastotra		,,	3/360
धर्मराजस्तुति Dharmarājastuti		SMTUL	202-87
		,,	418-35
धर्मराजस्तोत्र Dharmarājastotra		RAK	3/360

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	N	Folding Book		NS. 962
,,	Dev.	(140a-140b)		M. Film CIHTS
Paper	,,	(13,4-18)		
,,	,,	($34b^1$-$37b^2$)		
NP	,,	9	Incomp.	M. Film CIHTS
Paper	,,	(38,17-39,5)		
NP	N	Folding Book		
,,	,,	,,		
,,	,,	12	Incomp.	
,,	Dev.	(8b-9a)		M. Film CIHTS
,,	,,	(48b-49a)		,, ,,
,,	,,	(3b)		M. Film CIHTS
Paper		($402b^1$-$403b^4$)		
,,		($85b^1$-$86b^5$)		
NP	,,	(136b-137a)		M. Film CIHTS

Title	Author	Institution	Ms. No.
नरकोद्धारस्तोत्र Narakoddhārastotra		RAK	4/1033
		,,	4/2089
		MCBMBLJ	CH 122-H
		SMTUL	164-30
		,,	258-4
		,,	276-27
		CAMBRIDGE	1614
नवग्रह(देवता)स्तोत्र Navagraha (devatā) Stotra		RAK	3/360
		,,	,,
		,,	,,
नागपूजास्तोत्र Nāgapūjāstotra		,,	3/589
		SMTUL	420-X-6
नागराजस्तोत्र Nāgarājastotra		RAK	3/360
नानास्तोत्र Nānāstotra		,,	4/1041
नामसंगीतिस्तोत्र Nāmasaṁgītistotra		,,	5/130

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	Dev.	(12a)		M. Film CIHTS
,,	,,	(47-49)		,, ,, ,,
,,	,,	Folding Book		
Paper	,,	(44,15-45,12)		
,,	,,	(21,3-25,1)		
,,	,,	(88,3-90,5)		
,,	,,	(7b)		
NP	,,	(144a-146a)		M. Film CIHTS
,,	,,	(135b-136a)		,, ,, ,,
,,	,,	(187a-187b)		,, ,, ,,
,,	N	(210b)		M. Film CIHTS
Paper		(32IIb^{2}-3)		D-II P. 224, Appendix A. 184
NP	Dev.	(44b-45b)		M. Film CIHTS
,,	N	Folding Book	Comp.	
,,	,,	9	Comp.	

Title	Author	Institution	Ms. No.
नामसंगीतिस्तोत्रसंग्रह Nāmasaṁgītistotrasaṁgraha		RAK	Reel No. H. 189/12
		,,	4/2089
निरञ्जनास्तोत्र Nirañjanāstotra		,,	Reel No. E. 793/6
नैरात्म्यदेव्यष्टकस्तव Nairātmyadevyaṣṭakastava		SMTUL	420-IX-4
		RAK	3/360
		,,	3/589
पञ्चगीतस्तोत्र Pañcagītastotra		MOBMBLJ	CH 214-R
पञ्चजिनस्तोत्र Pañcajinastotra		RAK	3/360
पञ्चतथागतगीतस्तोत्र Pañcatathāgatagītastotra		SMTUL	258-11
		,,	164-26
पञ्चतथागतज्ञानस्तुति Pañcatathāgatajñānastuti		RAK	5/125

Material	Script	Folio	Comp./Incomp	Other Information
NP	N	13	Comp.	
,,	,,	129	Incomp.	
,,	Dev.	1	Comp.	
Paper		($5b^{8}$-$6a^{8}$)		D-II, P. 244, Appendix A 202.
NP	,,	(141b-142a)		M. Film CIHTS
,,	N	(222a)		,, ,, ,,
,,	,,	Folding Book		NS. 962
,,	Dev.	(140b-141a)		M. Film CIHTS
Paper		(46,3-48,2)		
,,		(42,10-43,3)		
NP	N	23	Comp.	

Title	Author	Institution	Ms. No.
पञ्चतथागतस्तुतिगाथा Pañcatathāgatastutigāthā		RAK	3/360
पञ्चतथागतस्तोत्र Pañcatathāgatastotra		,,	3/360
		,,	4/1033
		,,	4/2089
		,,	4/2089
पञ्चबुद्धस्तव Pañcabuddhastava		MOBMBLJ	CH. 26 E
पञ्चबुद्धस्तुति Pañcabuddhastuti		RAK	3/360
पञ्चबुद्धस्तोत्र Pañcabuddhastotra		,,	3/360
		,,	4/2089
		,,	4/2089
		SMTUL	164-17
		,,	276-32
पञ्चभूस्तोत्र Pañcabhūstotra		RAK	3/360
पञ्चाक्षरस्तुति Pañcākṣarastuti		,,	4/2089

Material	Script	Folio	Comp /Incomp.	Other Information
NP	Dev.	(189b-190a)		M. Film CIHTS
,,	,,	(5a)		M. Film CIHTS
,,	N	(43a)		,, ,,
,,	,,	(41a)	comp.	,, ,,
,,	,,	(127a)	,,	,, ,,
,,	,,	Folding Book		NS. 823
,,	Dev.	(155a-155b)		M. Film CIHTS
,,	,,	(188a)		,, ,,
,,	N	(63-65)		,, ,,
,,	,,	(102-103)		,, ,,
Paper	,,	(22,7-15)		
,,	,,	(99,5-100,5)		
NP	Dev.	(43a-43b)		,, ,,
,,	N	(62-63)		,, ,,

Title	Author	Institution	Ms. No.
पञ्चाक्षरस्तोत्र Pañcākṣarastotra		RAK	3/589
		SMTUL	164-15
		,,	276-11
		RAS	30-IV
पञ्चार्यस्तोत्र Pañcāryastotra		SMTUL	276-7
पञ्चाशतस्तोत्र Pañcāśatastotra		IASWR	MBB-I-67
		SMTUL	276/2
पद्मनर्तेश्वरस्तोत्र Padmanarteśvarastotra		RAK	3/360
पद्मनृत्येश्वरस्तोत्र Padmanṛtyeśvarastotra		,,	3/360
पीठस्तव Pīṭhastava		RAK	Reel No. E. 596/8
		,,	3/360
		,,	3/589
		IASWR	MBB—II-130
पीठस्तवस्तोत्र Pīṭhastavastotra		MCBMBLJ	DH 258
		SMTUL	196-13
		,,	199-23
		,,	418-140
		,,	419-III-153
		,,	476-IX

Material	Script	Folio	Comp /Incomp.	Other Information
NP	N	(251a)		M. Film CIHTS
Paper	,,	(20,15-21,4)		
,,	,,	(18,1-19,2)		
,,	,,	(13,2-14,1)		
NP	,,	100		
Paper		(5,2-7,1)		
NP	Dev.	(26a)		M. Film CIHTS
,,	,,	(146b)		,, ,,
,,	N	9	Comp.	
,,	Dev.	(112a-116a)		M. Film CIHTS
,,	N	(179-181)		,, ,,
,,		5		M. Fish ,,
,,	,,	6	Incomp.	Missing F. 7.
Paper	,,	($29a^5$-$35b^2$)		
,,	,,	($168a^3$-$175b^4$)		
,,	,,	($249b^5$-$253a^6$)		
,,	,,	($294a^6$-$298b^2$)		D. II. P. 244. (Appendix A. 170)
,,	,,	—		

Title	Author	Institution	Ms. No.
पीठस्तवस्तोत्र एवं अन्य स्तोत्र Pīṭhastavastotra and other stotra		MCBMBLJ	CA 36
पूजास्तोत्रसंग्रह Pūjāstotrasaṃgraha		RAK	Reel No. H 26/4
पोतलकास्तोत्र Potalakāstotra		,,	4/2089
प्रज्ञापारमिता-एकविंशतिस्तोत्र Prajñāpāramitā-Ekaviṁśatistotra		,, MCBMBLJ	4/1391 CH 174-1
प्रज्ञापारमितास्तुति Prajñāpāramitāstuti		RAK SMTUL CAMBRIDGE	3/360 418-50 1614
प्रज्ञापारमितास्तोत्र Prajñāpāramitāstotra No. 1127 (Ka 76a⁴-76b⁷) Śes-rab-Kyi-Pha-rol-tu-Phyin-maḥi-bstod-pa. A. Klu-sgrub T. Thig-le bum-pa.		RAK ,, ,, ,,	3/360 ,, ,, Reel No. H. 150/13
प्रथमाक्षर-सप्त-मिश्रण-संयुक्तषडक्षरस्तव Prathamākṣara-sapta-miśraṇa-sṁyukta-Ṣaḍakṣarastava		SMTUL ,, ,,	202-86 418-31 420-V-3

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	N	201(1b-201a)		
				NS. 906
,,	,,	7	Incomp.	
,,	,,	127-128		M. Film CIHTS
,,	Dev.	10	Comp.	
,,	N	5(1b-5b)		
,,	Dev.	(26a)		,, ,,
Paper		$(123b^1-124b^1)$		
,,				
NP	,,	(61a-61b)		,, ,,
,,	,,	(76a-77a)		,, ,,
,,	,,	(155a)		,, ,,
,,	,,	3	Comp.	
Paper		$(401b^1-402b^1)$		
,,		$(80a^3-81a^5)$		
,,		$(6b^1-7b^2)$		D. II, P. 244. (Appendix A. 192)

Title	Author	Institution	Ms. No.
प्रणिधानस्तुति		RAK	3/360
Praṇidhānastuti		,,	3/360
प्रतिसरास्तुति Pratisarāstuti		,,	3/589
प्रतिसरास्तोत्र		,,	3/360
Pratisarāstotra		,,	3/360
	राहुलभद्र	,,	4/1391
	Rāhulabhadra	SMTUL	418-116
प्रत्यङ्गिरासिद्धिस्तव Pratyaṅgirāsiddhistava		RAK	Reel No. H. 42/5
प्रत्यङ्गिरास्तोत्र Pratyaṅgirāstotra		,,	3/360

Material	Script	Folio	Comp./Incomp.	Other Information
NP	Dev.	(53a)		M. Film CIHTS
,,	,,	(79b)		,, ,,
,,	N	(263-265)		,, ,,
,,	Dev.	(26b)		,, ,,
,,	,,	(43b-44b)		,, ,,
PL	,,	4	Comp.	
Paper		(182a^7-b^4)		
NP	,,	10	Comp.	
,,	,,	(104b-107a)		M. Film CIHTS

बौद्ध तन्त्रों में पीठोपपीठादि का विवेचन (३)

—डॉ० बनारसी लाल—

['धीः' के प्रथम तथा तृतीय अंक में इस शीर्षक से बौद्ध तन्त्रों में उल्लिखित पीठोपपीठादि का विमर्श किया गया था। उसी सन्दर्भ में प्रस्तुत अंक में हेरुक-मण्डल के प्रत्येक पीठ में स्थित वीर-वीरेश्वरियों के स्वरूप, विशेषकर मूर्तिविज्ञान की दृष्टि से जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं, उन पर प्रकाश डाला गया है। यद्यपि मण्डल के देवों के आम्नाय-परम्परा के कारण विभिन्न स्वरूप प्राप्त होते हैं, तथापि यहाँ दशबलाचार्य कृत वसन्ततिलक के आधार पर हेरुक के मण्डल में स्थित वीर-वीरेश्वरियों का स्वरूप प्रस्तुत किया गया है।]

बौद्ध तन्त्रों में पीठोपपीठादि के विवेचन के प्रसंग में हमने देखा है कि मुख्यतया चौबीस पीठ ही प्रचलित हैं। पीठों की संख्या का निर्धारण तथा उनकी स्वदेहमण्डल तथा बाह्य पीठों में स्थिति का निरूपण पूर्व सन्दर्भों में किया जा चुका है। उक्त सन्दर्भों में हमने देखा है कि जो प्रसिद्ध चौबीस पीठ हैं, उनमें खण्डकपाल आदि वीर (डाकिनी) तथा प्रचण्डा आदि वीरेश्वरियां क्रमशः स्थित हैं। इनमें पीठ एवं उपपीठ के अन्तर्गत आने वाले खेचरी; क्षेत्र, उपक्षेत्र, छन्दोह और उपच्छन्दोह में स्थित वीर-वीरेश्वरी भूचरी; तथा मेलापक, उपमेलापक, श्मशान तथा उपश्मशान में स्थित वीर-वीरेश्वरी पातालवासिनी हैं।

खेचर्योऽष्टौ तु योगिन्यो भूचर्योऽपि तथापराः।
याश्च पातालवासिन्यः सर्वास्तास्तासु संस्थिताः॥ (व० ति०, पृ० 120)

स्वदेहस्थ पीठस्थानों में ये काय, वाक् और चित्त चक्र में स्थित हैं। देहमण्डल की चारों दिशाओं में उलूकास्या, काकास्या, शूकरास्या तथा श्वानास्या स्थित हैं। कोणों में यमदाढी, यमदूती, यममथनी तथा यमदंष्ट्रिणी स्थित हैं तथा इसके छोरों में डाकिनी, लामा, खण्डरोहा तथा रूपिणी स्थित हैं[1]।

पीठोपपीठादि के विवेचन क्रम में इन वीर-वीरेश्वरियों के स्वरूप (आकार) पर, विशेषकर मूर्ति विज्ञान (Iconography) की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण विवरण दशबलाचार्य कृत वसन्ततिलक[2] में प्राप्त होता है। वहाँ उपर्युक्त 36 वीर-वीरेश्वरियों तथा हेरुक का स्वरूप उपलब्ध है। उक्त सन्दर्भ के आधार पर यहां प्रकाश डाला जा रहा है। वसन्ततिलक टीकाकार ने हेरुक को उपर्युक्त 36 वीर-वीरेश्वरियों से अभिन्न स्वीकार किया है—

षट्त्रिंशत्संविदाऽभिन्नस्वभावकं हेरुकं प्रभुम्। (व० ति०, पृ० 1)

---

1. देखिये 'धीः' अंक 3, पृ० 67.
2. वसन्ततिलक, परिशिष्ट सं० 4, पृ० 122-127.

संवरमण्डल एवं चक्रसंवर के मण्डल में प्रत्येक वीर के साथ वीरेश्वरी (योगिनी) युगनद्ध रूप में स्थित है, जिसका विवरण निष्पन्नयोगावली (पृ० 26-27) में संगृहीत संवरमण्डल में विवृत्त है। खण्डकपाल आदि चौबीस वीरों का स्वरूप प्रो० टुच्ची के ग्रन्थ 'The Temples of Western Tibet and their Artistic Symbolism' पृ० 38-41 तथा Śri Cakrasaṁvara Tantra'[1] भूमिका, पृ० 16-17 पर उद्धृत किया है। अतः उसका यहां उल्लेख नहीं किया जा रहा है।

प्रथमतः 24 पीठों में स्थित वीरेश्वरियों के स्वरूप का विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है—

1. प्रचण्डा[2]

पुल्लीर-मलय पीठ में स्थित प्रचण्डा का स्वरूप इस प्रकार का है—इनके मुख का वर्ण श्वेत तथा मुख का आकार किनकास्य (?) है। भैरव नगण(?)मुख षडभुजाओं वाले हैं। प्रत्येक हस्त में कर्ति, कपाल, डमरु, खट्वांग, पाश तथा अंकुश लिये हुए हैं। द्वीपिचर्म तथा महारस धारण की हुई आलिङ्गित मुद्रा में हैं।

"पुल्लीरे तु प्रचण्डा किनकास्या श्वेतवक्त्रा भैरवनगणमुखषड्भुजा कर्तिकपालडमरुखट्वाङ्ग तथा पाशाङ्कुशमेव च। शृङ्गारद्यु(द्वी)पिचर्मवरधरा महारसधरा कामालिङ्गणतत्परा"।

(व० ति०, पृ० 122)

2. चण्डाक्षी

जालन्धर में स्थित चण्डाक्षी का स्वरूप एक मुख, दिगम्बर, तीन नेत्र तथा मेघवदन वाली है और मुण्डमाला से आवृत है। सौम्यरूप षड्भुजाओं वाली है। प्रत्येक हस्त में खट्वांग, डमरु, वज्र, घण्टा, कर्ति और कपाल धारण किये हुये हैं। हार नौ(नू)पुर से युक्त, भीषण जटाजूट, ललज्जिह्वा, भयानक रूप वाली है।

"जालन्धरे तु चडाक्षिः (क्षी)। एकानना दिगम्बरा, त्रिनेत्रा मेघवदना मुण्डमालावृता तथा। षड्भुजा सौम्यरूपा खट्वाङ्गडमरुस्तथा। वज्रघण्टाकर्तिकपालमेव च। हारार्द्धहारनूपुरान्वित-(ता)भि(भी)षणजटाजूटसंयुक्ता ललज्जिह्वा भयानका" (व० ति०, पृ० 122)।

3. प्रभामती

ओडियान में प्रभामती अवस्थित हैं, जो एक मुख तथा तीन नेत्र वाली हैं। हाथों में कर्ति,

---

1. Śri Cakrasaṁvara Tantra. Ed. by Kazi Dawa Samdup.

2. संवर-मण्डल में प्रचण्डादि 24 देवियों का सामान्य स्वरूप इस प्रकार दिया है 'त्रिनेत्रों वाली एक वदन रौद्ररूप, मुक्तकेश तथा नग्न हैं। इनके हाथों में कर्ति तथा कपाल हैं—"प्रचण्डादि देव्यास्त्रिनयनैकवदना रौद्ररूपिण्यो मुक्तकेशा नग्ना द्विभुजा आलिङ्गितकरेण कपालं सव्येन दुष्टतर्जनकर्तिकां बिभ्रत्यः" (निष्पन्नयोगावली, पृ० 27)।

कपाल, खट्वांग, डमरु, अंकुश तथा पाश धारण किये तथा मुण्डमाला से विभूषित हैं। जटाजूट से युक्त तथा हारनूपुर से अलंकृत हैं।

"ओडियाने प्रभामती एकवक्त्रा त्रिनेत्रका सव्ये कर्तिकपालं च खट्वाङ्गडमरुस्तथा। अङ्कुशं पाशहस्तं च मुण्डमालाविभूषणा। जटाजूटसमायुक्तं हारनौपुरविभूषिता॥" (व० ति०, पृ० 122)।

4. महानासा

अर्बुद में महानासा अवस्थित है, जो पिशिताशिनी रक्त मुख वाली, दिगम्बर है। वज्र, घण्टा धारिणी वीर, खट्वांग, डमरु, कर्ति तथा कपाल ली हुई है।

"अर्बुदस्तु पिसितासिन्यारक्तवक्त्रा दिगम्बरा वज्रघण्टाधरं वीरं खट्वाङ्गडमरुस्तथा कर्ति-कपालशृङ्गारा क्रीडतीह यथासुखम्" (व० ति०, पृ० 122)।

5. वीरमती

गोदावरी में वीरमती स्थित है, जो एक मुख, षट् भुजाएं, पीतवर्ण तथा जटाधारी है। घण्टा, वज्र, अंकुश, पाश, खट्वांग तथा डमरु एवं षण्मुद्रा[1] धारिणी देवी आलिंगित मुद्रा में है।

"अनहास्तु वीरमती ख्याता एकवक्त्रा षड्भुजा पीतवर्णा जटा तथा। घण्टावज्राङ्कुशपाशा खट्वाङ्गडमरू तथा। षण्मुद्राधरा देव्यालिङ्गितस्तथा" (व० ति०, पृ० 122)।

6. खर्वरी

रामेश्वरी में स्थित खर्वरी देवी एक मुख, श्यामवदन तथा त्रिनेत्र वाली है। आलिंगन चुम्बन करती हुई षट् भुजाओं में खट्वांग, परशु, डमरु, पात्र तथा षण्मुद्रा धारण किये है।

"रामेश्वरी तु या खर्वरी देव्यालिङ्गणचुम्बका एकवक्त्रा श्यामवदना नेत्रत्रयविभूषिता। षड्भुजालिङ्गणकरा खट्वाङ्गपर्शुडमरुपात्रं तथा षण्मुद्रा भवनि(नी)लसमप्रभा" (व. ति., पृ० 122)।

7. लङ्केश्वरी

देवीकोट में लङ्केश्वरी है, जो एकमुख, श्वेतवदन तथा छः भुजाओं से युक्त है। हाथों में वज्र, घण्टा, त्रिशूल, डमरु, खट्वांग तथा खप्पर हैं। नानासुखधर को अनुराग पूर्वक आलिङ्गित की हुई है।

---

1. पञ्चमुद्रा एवं षण्मुद्रा का भिन्न-भिन्न स्थलों पर उद्धरण आया है। ये षण्मुद्राएँ हैं—

कण्ठिका रुचकं रत्नं मेखलं भस्म सूत्रकम्।
षट् वै पारमिता एता मुद्रारूपेण योजिताः॥ (साधनमाला, पृ० 489)

विस्तार के लिये देखें साधनमाला भूमिका, पृ० CXXXV-CXXXIX.

"देवीकोटे तु या देव्या लङ्केश्वरीस्तथा एकवक्त्रा श्वेतवदना भुजाषड्विभूषिता वज्रघण्टा-त्रिशूलादि डमरुखट्वाङ्गखप्परस्तथा नानासुखधरालिङ्गण-अनुरागानि(ति)रागिनी"(व.ति., पृ० 123)।

8. द्रुमच्छाया

मालव में द्रुमच्छाया है, जो रक्तवर्ण, त्रिनेत्र तथा षट्भुजाओं वाली है। इनकी समालिङ्गित भुजाओं में खट्वांग, डमरु, वज्र, घण्टा, अंकुश तथा चक्र हैं। षण्मुद्राओं से विभूषित अट्टहास करती हुई महारौद्र हसित रूप में यह स्थित है।

"मालवे द्रुमच्छाया रक्तवर्णा त्रिनेत्रा षड्भुजा समालिङ्गखट्वाङ्ग डमरुस्तथा। वज्रघण्टाङ्कुशा चक्रं षण्मुद्राविभूषिता शब्दक्रियारसानो (तो) ये महारौद्रा तु हसिता" (व. ति., पृ० 123)।

9. ऐरावती

कामरूप में ऐरावती स्थित है। यह एक मुख श्यामवदन तथा षड्भुजाओं से युक्त है। हाथों में वज्र, घण्टा, खट्वांग, डमरु, कर्ति तथा मुण्डमाला धारण की है। जटाजूट से समाक्रान्त तथा लघुरस से समन्वित है।

"कामरूपे स्तनकक्षौ ऐरावती तथा। एकवक्त्रा श्यामवदना भुजाषण्मेव च तथा। वज्र-खट्वाङ्गडमरुघण्टाकर्तिमुण्डधरान्विता। जटाजूटसमाक्रान्तलघुरससमन्विता" (व. ति., पृ० 123)।

10. महाभैरवी

ओड़ में महाभैरवी स्थित है। यह एकमुखी, नीलांगी तथा द्वादश भुजाओं से युक्त है। इसकी भुजाओं में वज्र, घण्टा, हस्तिचर्म, कर्ति, कपाल, मुण्ड, त्रिशूल, खट्वांग, डमरु, अंकुश, पाश, चक्र, तथा असि हैं। यह नीले मुख और रक्त अङ्ग वाली है।

"ओड्रे स्तनयुगले श्रीभैरवी स्मृता। एकवर्णा (वक्त्रा) नीलाङ्गी भुजाद्वादशस्तथा। वज्रघण्टा-हस्तिचर्म कर्तिकपालमुण्डजाः। त्रिशूलखट्वाङ्गडमरु अङ्कुशपाशचक्र असि तथा नाना सुख्येति वील-(र)स्यां रक्ताङ्गी शुभकारिता" (व. ति., पृ० 123)।

11. वायुवेगा

त्रिशकुनि में वायुवेगा है, जो श्याम आभा वाली तथा द्वादश भुजाओं वाली है। हाथों में वज्र, पाश, मुण्ड, खट्वाङ्ग, डमरु, द्वीपिचर्म, अंकुश, त्रिशूल तथा कबन्ध हैं। यह तीन मुख वाली है जिनका वर्ण रक्त, श्याम तथा कृष्ण है।

"त्रिशकुनौ वायुवेगा श्यामाभालिङ्गीतिस्तथा भुजारविकराख्याता वज्रपाशमुण्डधारिखट्वाङ्ग-डमरुद्वीपिचर्माङ्कुश तथा। त्रिशूलकबन्धमेव च त्रिवक्त्रा रक्तश्यामकृष्णाङ्गी सुखशुडिस्तथा(?)"।
(व. ति., पृ० 123)

12. सुराभक्षी

कौशल में सुराभक्षी है, जो द्वादश भुजाओं वाली है। इसके हाथों में वज्र, घण्टा, नरचर्म, खट्वाङ्ग, डमरु, वज्र, त्रिशूल, अंकुश तथा पाश हैं। ब्रह्ममुण्डधारण की है तथा विविध भूषणों से भूषित कृष्ण वर्ण की हसित रूप में है।

"कोशले नासिकाग्रे च भुजाद्वादशा[न्वि]ता वज्रघण्टानरचर्म खट्वाङ्गं डमरुकस्तथा। वज्रत्रिशूलाङ्कुशमेव च पाशब्रह्ममुण्डधराकरा विविधाभूषणा चैव कृष्णवर्णस्तु हसिता:"।

(व. ति., पृ० 123)

13. श्यामा देवी

कलिङ्ग में श्यामा देवी है, जो द्वादश भुजाओं वाली है। वज्र, खट्वाङ्ग, उत्पल, त्रिशूल, कर्ति, कपाल, हस्तिचर्म, खट्वाङ्ग (?) डमरु, घण्टा धारण की है। पञ्चमुद्रा धारण की हुई, चुम्बित तथा आक्रान्त की है।

"वदने श्यामादेव्यालिङ्गिता भुजाद्वादशख्याता वज्रलिङ्गणा खट्वाङ्गोत्पलत्रिशूलं च कर्तिकपालमेव च। हस्तिचर्मं खट्वाङ्गडमरुकस्तथा घण्टाश्याम कृष्णार्द्धे चैव पञ्चमुद्रादेहा चुम्बिताक्रान्तमेव च" (व. ति., पृ० 123)।

14. सुभद्रा

लम्पाक में सुभद्रा अवस्थित है। यह श्वेत मुख वाली तथा द्वादश भुजाओं वाली है। इसके हाथों में वज्र, घण्टा, मुण्ड, खट्वाङ्ग, अंकुश, दो हाथों से योनि को ढकी हुई, दन्तिचर्म, त्रिशूल, कर्ति, पात्र धारण किये धवल देह वाली है।

"लम्पाके सुभद्राङ्गश्वेतवक्त्रा धरास्तथा भुजाप्रभाकरालिङ्गि वज्रघण्टा च मुण्ड-खट्वाङ्गाङ्कुशदन्तिचर्मद्विहस्ताभ्यां योनिमुद्रा तथा परा त्रिशूलं कर्तिपात्रमेव च क्रीडति श्रृङ्गारा धवलदेहास्तथा" (व. ति., पृ० 123)।

15. हयकर्णा

कांची में हयकर्णा स्थित है, जो एक मुख तथा कुङ्कुमारुण वर्ण की है तथा अष्टादश भुजाओं से युक्त है। इसके दक्षिण हाथों में वज्र, पर्शु, दन्त, त्रिशूल, कर्ति, चक्र, असि, श्रृङ्खला तथा अंकुश हैं। वाम हाथों में घण्टा, पाश, खट्वाङ्ग, पात्र, ब्रह्ममुण्ड, उत्पल, ध्वज, छत्र तथा पर्वत हैं। यह महाप्रज्ञा द्वारा आलिङ्गित है।

"हृदये हयकर्णा एकवक्त्रा दिवाकारा वर्णकुङ्कुमारुणं भुजाष्टादशस्तथा। दक्षिणवज्रपर्शुदन्त-त्रिशूलकर्तिचक्रासिश्रृङ्खलाङ्कुशस्तथा वामे घण्टापाशखट्वाङ्गपात्रब्रह्ममुण्डोत्पलध्वजछत्रपर्वतस्थिता। महाप्रज्ञालिङ्गिता काद्यालिङ्गानुरागिनी(णी)" (व. ति., पृ० 123)।

16. खगानना

हिमालय में खगानना स्थित है, जो चार मुख तथा अष्टादश भुजाओं वाली है। मुखों के वर्ण कृष्ण, श्याम, पीत तथा रक्त हैं। दक्षिण हस्तों में वज्र, विश्ववज्र, खड्ग, चक्र, अंकुश, दन्त, शर, कर्ति, दो हाथों में हस्तिचर्म, वाम हाथों में घण्टा, पात्र, अभय, डमरु, ब्रह्ममुण्ड, पाश, पर्शु, खट्वाङ्ग तथा षण्मुद्रा धारण किये भीषण स्वरूप की है।

'हिमालये खगानना वेदवक्त्राष्टादशभुजास्तथा। मूलमुखकृष्णं श्यामपीतरक्तमेव च। दक्षिणहस्तां वज्रविश्ववज्रखड्गचक्राङ्कुशदन्तशरकर्तिहस्तिचर्मा द्विहस्ता वामे घण्टापात्र अभयकमण्डरु ब्रह्ममुण्डपाशपर्शुखट्वाङ्गा षट्मुद्राधरारवान्वितभीषणा" (व. ति., पृ० 124)।

17. चक्रवेगिनी (वेगा)

प्रेतपुरी में चक्रवेगिनी स्थित है। यह चार मुख वाली है तथा मुखों के वर्ण कृष्ण, रक्त, श्वेत तथा श्याम हैं। दो हाथों में हस्तिचर्म तथा सर्वराजेन्द्र मुद्रा हैं, दक्षिण हाथों में वज्र, अंकुश, कर्ति, डमरु, त्रिशूल, उत्पल, शिखर तथा वाम हाथों में घण्टा, पाश, पात्र, कबन्ध, ध्वज, छत्र तथा कुलिश हैं।

"प्रेताधिस्थिता च चक्रवेगिनी। कृष्णवर्णा चतुर्वक्त्रा श्वेतश्यामरक्तमेव च। द्विहस्ता हस्तिचर्मा द्विहस्ताभ्यां सर्वराजेन्द्रमुद्रास्तथा दक्षिणवज्राङ्कुशकर्तिडमरुत्रिशूलोत्पलशिखराः। वामे घण्टापाशपात्रकबन्धध्वजच्छत्रकुलिशाः। नावोत्साहकलक्रान्ति क्रीडति शिखरारुणा"।

(व. ति., पृ० 124)

18. खण्डरोहा

गृहदेवता में खण्डरोहा स्थित है। यह अष्टादश भुजाओं वाली रौद्ररूपी पाँचमुखी है। मुख नील, पीत, रक्त, कुङ्कुम तथा श्यामवर्ण के हैं। तथा षण्मुद्राओं के आभरण से उज्ज्वल हैं। दो हाथों में हस्तिचर्म तथा धेनुमुद्रा है, तथा दूसरे हाथों में वज्र, असि, कुण्ड, त्रिशूल, कर्ति, डमरु तथा वर धारण की हुई है। वाम हाथों में खट्वाङ्ग, घण्टा, पाश, पात्र, कंचु, पर्शु तथा पर्वत धारण की है। यह घन प्रीतिकर देवी शृङ्गाराभरणों से दीप्त है।

"गृहदेवती गुदस्थाने अष्टादशभुजास्तथा पञ्चवक्त्रा रौद्ररूपा नीलपीतरक्तकुङ्कुमश्यामस्तथा षण्मुद्राभरणोज्वला। हस्तिचर्मा द्विहस्तां धेनुमुद्रा तथा परा वज्रासिकुण्डत्रिशूलकर्तिडमरुवरधरास्तथा दक्षिणे वामे खट्वाङ्गघण्टापाशपात्रकञ्चु पर्शुमेव च पर्वतौ तथा घनप्रीतिकरा देवी शृङ्गाराभरणोज्ज्वला" (व. ति., पृ० 124)।

19. सौण्डिनी (शौण्डिनी)

सौराष्ट्र में सौण्डिनी स्थित है, जो नग्न है तथा जिसके रोमकूप स्पष्ट दीख रहे हैं, छः वक्त्र वाली है, जिनके वर्ण श्याम, कृष्ण, रक्त, श्वेत, पीत तथा हरित हैं। देह में पुष्पमाला तथा

मुण्डमाला लम्बित है। दो हाथों में नरचर्म तथा योनिमुद्रा में हैं। दक्षिण हाथों में वज्र, पर्शु, डमरु, कर्ति, अंकुश, चक्र तथा दण्ड हैं। वाम हाथों में घण्टा, पाश, खट्वाङ्ग, पात्र, मुण्ड, ध्वज तथा छत्र व्याघ्रचर्म धारण किये शृङ्गारों से युक्त हसित मुख वाली है।

"सौराष्ट्रे सौण्डिनी ख्याता नग्नकूपरोमगास्तथा। षड्वक्त्रा मुण्डमालालिङ्गिस्तथा। श्यामकृष्णरक्तश्वेतपीतमास्यमेव च। पुष्पमालाधरादेहा मुण्डमालाप्रलम्बिता। नरचर्म द्विहस्तया योनिमुद्रास्तथापरा। दक्षिणवज्रपर्शुडमरुकर्ति अङ्कुशचक्रदण्डस्तथा वामे घण्टापाशपात्रखट्वाङ्गपात्रमुण्डध्वजच्छत्रमेव च व्याघ्रचर्म निवासनं शृङ्गारा हसितानना" (व. ति., पृ० 124)।

20. चक्रवर्मिणी

सुवर्णद्वीप में चक्रवर्मिणी स्थित है, जो रक्तवर्ण की तथा जटाजूट से समायुक्त है। मुण्डमाला से सुशोभित तथा हाडाभरण और उत्तम नूपुर से सुशोभित है। इसकी अष्टादश भुजाएँ हैं, जो शृङ्गाराभरणों से उज्ज्वल हैं। दक्षिण भुजाओं में वज्र, परशु, शर, त्रिशूल, तोमर, सूर्य तथा द्वीपिचर्म, अक्षमाला तथा वर धारण किये है। वाम हाथों में घण्टा, खट्वाङ्ग, चाप, पात्र, ध्वज, अंकुश, दण्ड तथा उत्पल हैं।

"सुवर्णद्वीपे चक्रवर्तिनी (वर्मिणी) रक्तवर्णा जटाजूटा मुण्डमालाशोभिता हाडाभरणैर्नूपुरोत्तमा। अष्टादशभुजादेवं शृङ्गाराभरणोज्वलः। दक्षिणवज्रपर्शुशरत्रिशूलतोमरसूर्यद्वीपिचर्मधरास्तथा। अक्षमाला वरधरा वामे घण्टखट्वाङ्गचापपात्रध्वजाङ्कुशदण्डोत्पला वेदाचरणसंयुक्तं क्रोडानन्दसुशोभिता" (व. ति., पृ० 124)।

21. सुवीरा

नगर में सुवीरा है, जो षण्मुखी है। मुखों का वर्ण कृष्ण, श्वेत, रक्त, धूम्र, पीत तथा हरित है। यह महारौद्र रूप में अट्टहास करती है। भुजाएँ अष्टादश हैं। वाम हाथों में यन्त्र, मुद्रा, घण्टा, ज्वाला, दीपक, विश्ववज्र, ध्वजा, ब्रह्ममुण्ड, कुठार तथा पाश हैं। दक्षिण हाथों में वज्र, त्रिशूल, डमरु, छुरिका, कर्ति, परशु, रत्न, वेणु और पर्वत हैं।

"नगरे सुवीरा ख्याता षण्मुखी कृष्णमेव च श्वेतरक्तधूम्रपीतहरितस्तथा महारौद्रा सहासमेव च। भुजाष्टादश चैव सुवीरालिङ्गणस्तथा। वामे ज(य)न्त्रमुद्रा, घण्टाज्वालादीपकविश्ववज्रध्वजा ब्रह्ममुण्डकुठारपाशमेव च। दक्षिणवज्रत्रिशूलडमरुच्छुरिकाकर्तिपरशुरत्नवेणुपर्वताः। नानाक्रीडानन्दसुशोभिता" (व० ति०, पृ० 124)।

22. महाबला

सिन्धु में महाबला है, जो चारमुखी है, जिनके वर्ण श्याम, कृष्ण, पीत तथा रक्त हैं। इसके अष्टादश भुजाएँ हैं। इसका स्वरूप महाघोर, ललज्जिह्वा, दंष्ट्रोत्कट भीषण है। वाम हाथों में घण्टा, फेट, दन्त, खट्वांग, शूर(ल), मुसल, काद्य और वर हैं तथा दक्षिण हाथों में वज्र, खड्ग,

अंकुश, डमरु, अभय, कर्ति, त्रिशूल तथा चक्र हैं। दो हाथों में हस्तिचर्म है। षण्मुद्राओं से मुद्रित तथा मुण्डमाला से सुशोभित है।

"महाबला चाश्रुवाहिन्यां चतुर्वक्त्रा श्याममेव च। कृष्णरक्तपीतवदना भुजाष्टादशमेव च। ललज्जिह्वा महाघोरा दंष्ट्रोत्कटभीषणा। वामे घण्टफेत(ट)दन्तं खट्वाङ्गशूर(ल)मुसलं काद्यं वरस्तथा। दक्षिणे वज्रखङ्गाङ्कुशडमरु अभयकर्तित्रिशूलचक्रस्तथा। हस्तिचर्मा द्विहस्ता प्रज्ञालिङ्गानुरागिनी मुद्राषण्मुद्रितां सर्वा मुण्डमालासुशोभिता" (व० ति०, पृ० 124-25)।

23. चक्रवर्तिनी

मेरु में चक्रवर्तिनी स्थित है। यह आठ वक्त्र वाली है। महापीत तथा भैरव से युक्त भीषण रूप वाली है। ये मुख श्वेत, रक्त, धूम्र, पिङ्गल, कृष्ण, श्याम तथा राग वर्ण के हैं। अष्टादश भुजाएँ हैं, रौद्र स्वभाव की है तथा छः मूल मुद्राओं से विभूषित है। वाम हाथों में घण्टा, पात्र, पाश, ज्वाला, खट्वाङ्ग, वेणु, कमण्डलु तथा सूत्र हैं, दो हाथों में हस्तिचर्म है। दक्षिण हाथों में वज्र, कर्ति, परशु, त्रिशूल, डमरु, चक्र, दण्ड तथा मुसल हैं। महाज्ञानरस से युक्त एवं क्रीड़ानन्द में मग्न है।

"मरौ तु चक्रवर्तिनी चैव महाक्षेत्राधिनाथास्तथा। अष्टवक्त्रा महापीता भैरवान्वितभीषणा श्वेतरक्तधूम्रपिङ्गलं कृष्णश्यामरागस्तथा। भुजाष्टादशा रौद्रं षण्मूलमुद्राविभूषिता। वामे घण्टा पात्रपाशज्वाला वै खट्वाङ्गवेनुकमण्डरु(लु)सूत्रा हस्तिचर्म द्विहस्ताभ्यां पञ्चमुद्राविभूषिता। दक्षिणे वज्रकर्तिपरशुत्रिशूलडमरुचक्रदन्दं(ण्डं)मूग(स)लस्तथा। महाज्ञानरसैर्युक्ता क्रीडानन्दसुशोभिता।"

(व० ति०, पृ० 125)

24. महावीर्या

कुलूता में महावीर्या अवस्थित है, जो तीन वक्त्र वाली है, जिनके वर्ण धूम्र, श्याम तथा रक्त हैं। ये तीन नेत्र तथा महाभयानक रूपी हैं। अष्टादश भुजाओं तथा मुण्डमाला से सुशोभित है। दक्षिण हाथों में वज्र, खड्ग, मुसल, अंकुश, मेखला, कर्ति, परशु, रत्न, सिरा तथा वाम हाथों में घण्टा, डमरु, पाश, शूर (ल), पात्र, तर्जनी, तोमर, कुण्ड तथा त्रिशूल हैं। भीषण अट्टहास करती हुई गन्ध पुष्प से युक्त है।

"महावीर्या बालशिङ्घानवाहिनी त्रिवक्त्रा धूम्रवदना तथा श्यामरक्तत्रिनेत्रा च महाभीमा भयानका। हस्ताष्टादश चैव मुण्डमाला सुशोभिता। दक्षिणे वज्रखड्गमुशलाङ्कुशमेखलार्कतिपरशु-रत्नसिराघण्टडमरुपाशशूर(ल)स्तथा पात्र तर्जन तोमला(रा)कुण्डत्रिशूला वामे तथा। महाहासास्तु भीषणा गन्धं पुष्पा महालिङ्गनस्तथा" (व० ति०, पृ० 125)।

मण्डल के चारों द्वारों पर स्थित डाकिनी आदि का स्वरूप इस प्रकार है—

25. डाकिनी

यह दो भुजाओं वाली तथा श्वेतवर्ण की है। वज्र और घण्टा से आलिंगित है तथा कटि व्याघ्रचर्म से आवृत है। डाकिनी आलिंगित चार भुजाओं में प्रास, कर्ति, खट्वांग तथा डमरु हैं।

आनन्द रूपो, कृष्णवर्ण के भयानक स्वरूप वाली तथा महामुद्रा से विभूषित भैरव से युक्त भीषण रूप वाली है।

"द्विभुजामेकवदना श्वेतवर्णा सुशोभिता वज्रघण्टालिङ्गिता चैव व्याघ्रचर्मवृता कटिः डाकिन्यालिङ्गितभुजा किं चतुर्भुजाः प्रात(स)र्कतिखट्वाङ्ग डमरुस्तथा कृष्णवर्णा भयानका आनन्द-रूपधरा। महामुद्राविभूषिता भैरवान्वितभूषणा" (व० ति०, पृ० 125)।

26. लामा

चार भुजाओं वाली श्यामवर्ण की लामा है। इसके हाथों में कर्ति, कपाल, खट्वांग तथा डमरु हैं। परमानन्द रूप से तीन वक्त्र तथा षड्भुजाओं वाली भी है। इसकी भुजाओं में वज्र, घण्टा, डमरु, खट्वांग, हस्तिचर्म हैं तथा हार और नूपुर से विभूषित हैं। लामालिंगित शब्दान्वित पीतवर्ण के आलीढासन में स्थित भैरव और कालरात्रि को पाद से आक्रान्त की हुई है।

"श्यामा लामालिङ्गणा चतुर्भुजा कर्तिकपालखट्वाङ्गडमरुस्तथा। श्रीपरमानन्दरूपेन(ण)त्रिवक्त्रा षड्भुजास्तथा। वज्रघण्टाडमरुखट्वाङ्गहस्तिचर्मास्तथा हारनौपुरविभूषिता लामालिङ्गनशब्दान्विता पीतवर्णा तु आलीढासनसंस्थिता। भैरवं कालरात्रिं च पदाक्रान्तसुशोभिता" (व० ति०, पृ० 125)।

27. रूपिणी

विरमानन्दस्वरूपिणी रूपिणी रक्तवर्ण की, चार मुखवाली महाभीम प्रलय काल को अग्नि के समान प्रभा वाली है। इनके वर्ण राग, श्याम, कृष्ण तथा पीत हैं तथा आठ भुजाओं वाली है। दो हाथों में हस्तिचर्म, वज्र, घण्टा, डमरु, खट्वांग, परशु तथा पाश हैं। यह महा अनुराग से रक्त है।

"विरमानन्दरूपाद्या रक्तवर्णसुरूपिणी। चतुर्वक्त्रा महाभीमा प्रलयाग्निसमप्रभा। रागश्याम-कृष्णपीतस्तथा भुजाष्टकरा रौद्रं महाङ्कुशा तु हसिता। हस्तिचर्म द्विहस्ताभ्यां वज्रघण्टाडमरु तथा खट्वाङ्गपरशुपाशस्तथा। महारागानुरागिणी परा" (व० ति०, पृ० 125)।

28. खण्डरोहा

खण्डरोहा भैरव से युक्त भीषण स्वरूपिणी है। रक्त वर्ण की चार भुजाओं वाली है। इसके हाथों में पात्र, कर्ति, डमरु, खट्वांग हैं तथा भैरव और कालरात्रि को पदाक्रान्त किये सुशोभित हैं। सहजानन्द स्वरूपिणी खण्डरोहा पीतवर्ण की महाघोर रूपी द्वादश भुजाओं से युक्त है। चार मुख हैं, जो पीत, रक्त, श्याम, तथा कृष्ण वर्ण के हैं। दक्षिण भुजाओं में वज्र, डमरु, अंकुश, परशु त्रिशूल हैं। वाम भुजाओं में घण्टा, खट्वांग, पात्र, पाश, ब्रह्ममुण्ड तथा दो हाथों में हस्ति चर्म है। रूपिणी से आलिंगित है, देवी की चार भुजाए हैं, इन भुजाओं में खट्वांग, डमरु, पाश, कर्ति धारण किये हुये है। देवी शृंगार से युक्त व्याघ्रचर्म पहने हुए हार और नूपुर से विभूषित है। महाभैरवकालरात्रि को अनुरागपूर्वक आलिंगित किये हुए है।

"खण्डरोहा तु लिङ्गि च भैरवान्वितभीषणा। रक्तवर्णा महारम्या चतुर्भुजाकरान्वितम्। पात्रं कर्ति डमरुखट्वाङ्गमेव च। भैरवं कालरात्रि च पादाक्रान्ता तु शोभिता। सहजस्वभुजा-द्वादशास्तथा। चतुर्वक्त्रा महाशान्ता पीतरक्तश्यामकृष्णस्तथा। दक्षिणभुजवज्रडमरु अङ्कुशपरशु-त्रिशूलाः। वामे घण्टखट्वाङ्गपात्रपाशब्रह्ममुण्डस्तथा। हस्तिचर्मा द्विहस्ताभ्यां रूपिण्यालिङ्गितं सुखः। चतुर्भुजा महादेव्या खट्वाङ्गडमरुपाशकर्तिस्तथा। गौरवर्णा महादेवी शृङ्गाररसा रूपरसान्विता व्याघ्रचर्मनिवासना हारनौपुरविभूषिता। महाभैरवकालरात्रि च देव्यालिङ्गानुरागिनी"।

(व० ति०, पृ० 125-26)

मण्डल की चारों दिशाओं में स्थित काकास्यादि का स्वरूप इस प्रकार है—

29. काकास्या[1]

कोणों में काकास्या महादेवता नीलवर्ण की चार भुजाओं वाली है। हाथों में कर्ति, पात्र, खट्वांग तथा डमरु हैं। डाकिनी देवी को अनुराग पूर्वक आलिंगित किये है। हारार्द्धहार से समायुक्त लपलपाती जिह्वा लिये भयंकर रूपवाली है। महाप्रेत समारूढ़ मुण्डमाला धारण किये तथा डाकिनी शुष्कमुण्ड विभूषित है।

"कोणेषु महावीरा काकास्यादिदेवता नीलवर्णाभा चतुर्भुजास्तथा सव्यकर्तिपात्रखट्वाङ्ग-डमरु तथा। डाकिन्यादि देवीश्च आलिङ्गनानुरागिनी। हारार्द्धहारादिसमायुक्तं ललजिह्वा भयङ्करा। महाप्रेतसमारूढा मुण्डमालावलम्बिता। डाकिन्या महारागा शुष्कमुण्डविभूषिता"।

(व० ति०, पृ० 120)

30. उलूकास्या

उलूकास्या श्याम वर्ण की चार भुजाओं वाली भयंकर रूपधारिणी है। हाथों में कर्ति, पात्र, खट्वांग तथा डमरु हैं। डाकिनी आदि देवियों के द्वारा आलिंगित हैं। डाकिनी देवी कृष्ण वर्ण की, महा प्रेतासन पर आरूढ़ नाना तेज वाली है।

"उलूकास्या श्यामवदना चतुर्भुजा भयङ्करा। सव्यकर्तिपात्रखट्वांगडमरुस्तथा। डाकिन्यादि-देव्यालिङ्गितशोभिता डाकिनी देवी कृष्णलिङ्गी शुभकारिणी महाप्रेतासनारूढा नानातेजसमप्रभा।"

(व० ति० पृ० 126)

31. श्वानास्या

श्वानास्या रक्त वर्ण की चार भुजाओं वाली हास्य रूप में स्थित है। हाथों में कर्ति, कपाल, खट्वांग तथा डमरु हैं तथा रक्त वर्ण की है। षण्मुद्राओं से विभूषित तथा महाप्रेतासन में स्थित है।

---

1. संवर-मण्डल में जो काकास्यादि हैं इन्हें डाकिनी आदि की तरह परमेशानुगत बताया गया है—'डाकिन्यादिवत् परमेशानुगताः' (निष्पन्नयोगावली पृ०, 27)।

"श्वानास्या रागवर्णा चतुर्भुजा तु हसिता। सव्यकर्तिकपाला खट्वाङ्गडमरुस्तथा। डाकिन्यालिङ्गितश्चैव महारौद्रं तु हसिता। डाकिन्यादेव्यारक्तवर्णा स्वरूपिणम्। षण्मुद्रविभूषिता महाप्रेतासनस्थिता" (व० ति०, पृ० 126)।

32. शूकरास्या

शूकरास्या महाघोररूपिणी पीतवर्ण की चतुर्भुजाओं वाली है। डाकिनी द्वारा आलिंगित है, जो महाघोररूपी है। हाथों में कर्ति, कपाल, खट्वांग तथा डमरु हैं। डाकिनी पीत वर्ण की, हार नूपुर आदि से युक्त श्रृंगार से सुन्दर है। महाप्रेत पर समारूढ़ बड़ी-बड़ी दाढ़ों वाली हँसती हुई है।

"शुक्ला श्यामा (शूकरास्या) महाघोरा पीतवर्णा चतुर्भुजा। डाकिनीमालिङ्गिता महाघोरा तु घोलाला: सव्ये कर्ति कपालं खट्वाङ्गडमरुस्तथा। डाकिनी पीतवर्णा महाताद(ड)नधर्मता। हारनौपुरश्रृङ्गारा रससुन्दरम्। महाप्रेतसमारूढ़ा महादंष्ट्रास्तु हसिता" (व० ति०, पृ० 126)।

आग्नेयादि कोणों में स्थित यमदाढी आदि का स्वरूप इस प्रकार है—

33. यमदाढी[1]

यमदाढी कृष्णपीत वर्ण की तथा चार भुजाओं वाली है। हाथों में कर्ति, कपाल, खट्वांग तथा डमरु लिये है। साकिनी से आलिंगित है। साकिनी का मुख कृष्ण वर्ण का है। यह नग्न हाहाकार करती हुई जिह्वा तथा रसों से युक्त है। हाडाभरण धारण किये तथा प्रेत पर आरूढ़ भीषण रूप वाली है।

"कोणेषु यमदाढी कृष्णपीता चतुर्भुजा। सव्यकर्तिकपालखट्वांगडमरुस्तथा। साकिन्यालिङ्गिता कृष्णवक्त्रास्तु साकिनो। नग्नहाहाकारजिह्वा रसान्वितं तथा। हाडाभरणं च प्रेतसंस्था तु भीषणा"। (व० ति०, पृ० 126)

34. यमदूती

यमदूती पीतरक्त वर्ण की चार भुजाओं वाली है। हाथों में कर्ति, कपाल, खट्वांग तथा डमरु हैं। यह हाकिनी से आलिंगित है। हाकिनी देवी रौद्र स्वरूप की रक्तवर्णी तथा झनझनाते हार-नूपुर आदि से विभूषित है। महाप्रेताधिवासिनी राक्षसादि को मर्दित किये हुये है।

"यमद्युति पीतरक्ता चतुर्भुजा। सव्ये कर्तिकपालं च खट्वाङ्ग डमरुमेव च। हाकिन्यालिङ्गितं चैव महोत्साहा तु हासिता। हाकिनीदेव्यो रक्तवर्णास्तु रौद्रता। महाहारनौपुरौ झुझरायलोत्ता। महाप्रेताधिवासी स्वराक्षसादिमर्दिनी" (व० ति०, पृ० 126)।

---

1. यमदाढी आदि चार देवता, जो कोणों में स्थित हैं, संवरमण्डल के अनुसार मानुषी मुख वाली हैं—'कोणेषु यमदाढी-यमदूती-यमदंष्ट्रो-यममथन्यो मानुषीमुखा:'।

(निष्पन्नयोगावली, पृ० 27)

35. यमदंष्ट्री

यमदंष्ट्री श्यामरक्त वर्ण की चार भुजाओं वाली है। हाथों में कर्ति, कपाल, खट्वांग तथा डमरु लिये हुए है। योगिनी द्वारा आलिंगित तथा चुम्बित है। योगिनी श्वेत वक्त्र वाली है, जिसे अनुरागपूर्वक आलिंगित किये है। हाहाकार के अट्टहास से रौद्र तथा हूहुंकार भयानक है। महाश्वेत(प्रेत)समारूढ़ भीषण स्वरूपिणी है।

"यमदंष्ट्री श्यामरक्ता चतुर्भुजाकरान्विता। सव्यकर्तिकपालखट्वाङ्गडमरुमेव च। योगिन्यालिङ्गितं चैव कोलाहलचुम्बिकास्तथा। योगिनी श्वेतवक्त्रा कण्ठ्यालिङ्गिनुरागिणी। हाहाट्टहासरौद्रं हुहुकारभयानका। महाश्वेतासमारूढं दंष्ट्रोत्कटभीषणम्" (व॰ ति॰, पृ॰ 126)।

36. यममथनी

यममथनी कृष्णाङ्गी तथा चतुर्भुजा से युक्त है। यह वज्रदेवी द्वारा आलिंगित है। हाथों में कर्ति, कपाल, खट्वांग तथा डमरु हैं। वज्रदेवी रक्तवर्ण की महोज्वला है। महाप्रेत समारूढ़ हीहीकार करते हुये भयानक स्वरूप की तथा महामांस एवं वसासहित मांस का भक्षण करती है।

"यममथनी श्यामकृष्णाङ्गी चतुर्भजा करान्विता। वज्रदेव्यालिङ्गितास्तासु महासुखवज्रकरान्विता। सव्ये कर्तिकपालखट्वाङ्गडमरुस्तथा। वज्रदेव्या रक्तवर्णा क्रीडानन्दनमहोज्ज्वला। महाप्रेतासनारूढा हीहीकारभयानका। महामांसस्तु भोजिता वशामांसास्तु भोजिता"।
(व॰ ति॰, पृ॰ 126-27)

37. हेरुक[1]

श्री हेरूक महाकृष्णवर्ण के महाभीषण शब्द करते हुए आठ मुख तथा 16 भुजाओं से युक्त हैं। प्रत्येक हाथ करव्रात (वाल) से विभूषित हैं। मूल मुख महाकृष्ण अन्य मुख श्वेत, रक्त, पीत,

---

1. हेरुक के नाना रूपों का विवरण देते हुए विनयतोष भट्टाचार्य ने अपने ग्रन्थ An Introduction to Buddhist Esoterism, पृ॰ 131-32 में लिखा है कि शक्तियों की भिन्नता के कारण ये विभिन्न नामों से जाने जाते हैं। यथा जब चित्रसेना के साथ युगनद्ध हों तो बुद्धकपाल, वज्रवाराही के साथ संयुक्त हों तो वज्रडाक या संवर, वज्रयोगिनी के साथ युगनद्ध रूप में हों तो बुद्धडाकिनी या महामाया, ये सभी हेरुक के स्वरूप हैं। अपने दूसरे ग्रन्थ Indian Buddhist Iconography, पृ॰ 61 में वे लिखते हैं कि हेरुक प्रायः शक्ति या प्रज्ञा के साथ युगनद्ध रूप में उपलब्ध होते हैं। द्विभुज, चतुर्भुज, द्वादशभुज तथा षोडशभुज अनेक प्रकार से हेरुक के स्वरूप का वर्णन मिलता है। साधनमाला में पांच हेरुकसाधन प्राप्त हैं। साधनमाला की भूमिका पृ॰ CLXI में ढाका म्युजियम में प्राप्त हेरुक की मूर्ति का स्वरूप भी दिया है, जिसमें हेरुक देव मात्र हैं। साधनमाला, निष्पन्नयोगावली एवं अन्य प्राप्त साहित्य के आधार पर Prof. G. Tucci ने अपने ग्रन्थ 'The Theory and Practice of Maṇḍala' पृ॰ 68-69 में हेरुक के स्वरूप का विस्तार से विवरण प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार उन्होंने अपने दूसरे ग्रन्थ 'The

श्याम, हरित तथा कृष्ण वर्ण तथा ऊर्ध्व मुख धूम्र वर्ण का है, जो देखने में भीषण स्वरूपवाला प्रलयकाल की अग्नि के समान है। तीन ऊर्ध्व पिंगल नेत्र तथा षण्मुद्राओं से विभूषित हैं। दक्षिण हाथों में हस्ति, अश्व, खर, गो, उष्ट्र, मनुष्य, शार्दूल तथा मार्जार और वाम हाथों में पृथिवी, वरुण, पवन, मेघ, इन्द्र, सूर्य, यम तथा कुबेर हैं। देह मुण्डमाला तथा शुष्क मुण्ड से विभूषित है। हाडाभरण तथा नूपुर से विभूषित प्रलय की अग्नि की तरह प्रभा वाली है। चारों मार तथा ब्रह्मा, इन्द्र, उपेन्द्र और माधव को समाक्रान्त किये है। ये भगवती प्रज्ञा नैरात्म्या को आलिंगित किये हुये हैं। भगवती नैरात्म्या एक मुख तथा दो भुजा वाली है। इन के हाथों में कर्ति और कपाल हैं तथा शुष्क मुद्रा से विभूषित हैं। ये दिगम्बर नग्न तथा ऊर्ध्वमुख केश वाली हैं। इस तरह के सर्व सौख्य से युक्त हेरुक प्रेतारूढ़ आलिकालि पर संस्थित हैं।

"द्वासप्ततिसहस्रनाडिसम्भोगस्तु नायके किं नायके। एकः श्रीहेरुको वीरो नैरात्मा शुभकारिणी। महाकृष्णवर्णं भैरवान्वितभीषणम् अष्टास्या षोडशभुजा सर्वे करव्रातभूषिता। मूलमुखे महाकृष्णं श्वेतरक्तपीतश्यामहरितकृष्णा। ऊर्ध्वमुखं महाधूम्रं महादंष्ट्रोत्कटभीषणम्। प्रलयाग्निसमप्रभा भृकुटिकोटिमहाभीषणम्। ऊर्ध्वपिङ्गलमूर्द्धजं त्रिनेत्रं षण्मुद्राविभूषितं दक्षिणभुजे हस्तिअश्वखरगावोष्ट्रमनुष्यसादुरमर्जारस्तथा। वामभुजे पृथिवीवरुणपवनमेघइन्द्रसूर्ययमकुबेर-स्तथा। मुण्डमालाधरा देहशुष्कमुण्डाविभूषिता हाडाभरणनौपुरप्रलयाग्निसमप्रभा। चतुर्मारसमा-क्रान्ता ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रमाधवस्तथा। चतुश्चरणसमाक्रान्ता प्रज्ञालिङ्गानुरागिणी नैरात्म्यालिङ्गनसुखं भगवती नैरात्मा एकवक्त्रा द्विभुजा सव्ये कर्तिकपालं च शुष्कमुद्राविभूषिता। नग्ना ऊर्ध्वकेशास्तु दिगम्बरी तथा। नानामहाहेरुकं वै क्रोडानन्दस्तु महाबला। एवंभूतं महाहेवज्रं विभावयेत्। सर्व-सौख्यसंयुक्तं हेरुकं परमेश्वरम्। प्रभुं किं प्रभुम्। इत्येता वज्रयोगिन्योच्छत्रिसंवीरवीरेश्वरं प्रभुम्। प्रेतारूढा त्रिनेत्रा आलिकालिस्तु संस्थितः" (व॰ ति॰, पृ॰ 127)।

Temples of Western Tibet and their Artistic Symbolism' पृ॰ 23, 31 तथा 38 पर द्विभुज तथा चतुर्भुज हेरुक का स्वरूप उद्धृत किया है। द्वादशभुज हेरुक का स्वरूप Śri Cakrasaṁvara Tantra (Ed. by Kazi Dawa Samdup) Introduction, पृ॰ 22 पर विवृत किया है। मूलतः यह भिन्नता तन्त्र के आम्नाय या सिद्ध गुरु-शिष्यों की परम्परा के कारण मानी जाती है। परन्तु प्रस्तुत विवरण उपर्युक्त विवरणों से सर्वथा भिन्न हेरुक का स्वरूप प्रस्तुत करता है। प्रस्तुत सन्दर्भ में 'वसन्ततिलक' ही हेरुक का स्वरूप है।

नरोपा की प्रभास्वर योगसाधना

—डा० ठाकुरसेन नेगी—

['धी:' के नवें अंक में नरोपा को छः योगसाधनाओं में से तृतीय स्वप्नयोग-साधना का संक्षिप्त वर्णन किया जा चुका है। प्रस्तुत अंक में चतुर्थ प्रभास्वरयोग-साधना का संक्षिप्त वर्णन किया जा रहा है। संक्षेप में संसार के सभी प्राणी इस प्रभास्वर प्रकाश का कुछ क्षणों के लिये अपने जीवन के अन्तिम क्षणों में अनुभव करते हैं, परन्तु साधक समाधि की परम अवस्था में अपनी इच्छा से इस प्रभास्वर प्रकाश का अनुभव कर लेता है, बुद्ध के लिये तो वह सहज संवेद्य है। प्रभास्वर प्रकाश का अवतरण बुद्धत्व के अधिगम की अवस्था से अभिन्न है। जीवन की परिसमाप्ति के बाद उक्त सिद्धान्त को नहीं समझा जा सकता।]

प्रभास्वर योग का सिद्धान्त

प्रभास्वर[1] अनभिव्यक्तता (हेतु से समुत्पन्न वस्तुस्थिति के अभाव) का पर्याय है, वह 'निर्वाण' की अवस्था है, परमार्थ है, बुद्ध की पारमार्थिक चैतन्यावस्था है, वह धर्मकाय अथवा निर्वाण की रहस्यमयी आभा है, जो सांसारिक क्लेशों से असंस्पृष्ट है। वह वर्णनातीत है। उसे हम केवल जान सकते हैं और उसे जानना समग्र वस्तुओं की यथार्थता को जान लेना है। वर्णरहित होने के कारण वह गुणातीत प्रभास्वर (शुद्ध ज्योति) है। उसकी सीमा नहीं है। वह ब्रह्माण्ड में व्याप्त महत् तत्त्व (ज्ञान) है। सांसारिक विषयज्ञान से उसे नहीं जान सकते। उसका कोई रूप नहीं है। इसीलिये तो वह रूप में न बँधने वाले आकाश के सदृश है।

संसार के सभी प्राणी (मानव) इस प्रभास्वर प्रकाश का कुछ क्षणों के लिये अपने जीवन के अन्तिम क्षणों में अनुभव करते हैं। परन्तु योगी (साधक) समाधि की परमावस्था में अपनी इच्छा से उस प्रभास्वर प्रकाश का अनुभव कर लेते हैं। बुद्ध के लिये तो वह सहज संवेद्य है। प्रभास्वर प्रकाश का अवतरण बुद्धत्व के अधिगम की अवस्था से अभिन्न है। जीवन की परिसमाप्ति से बाद उक्त सिद्धान्त को नहीं समझा जा सकता, जैसा कि "वर-दो-थो-डोल" में कहा गया है "अतः गुरु जिज्ञासु साधक को प्रेरित करता है कि उसे मानव योनि में आकर परम चैतन्य के इस विरल अवसर को यों ही व्यर्थ समाप्त नहीं होने देना चाहिये"।

अन्यान्य भारतीय मनीषियों की भाँति शान्तिदेव ने भी मनुष्य-जन्म को केवल भोग-योनि न मानकर पुरुषार्थ-साधक दुर्लभ संयोग माना है। यह क्या साधारण सुयोग है कि आज हमने पुरुषार्थों के साधन करने में समर्थ मनुष्य-शरीर को पाया है? नरक में नहीं, प्रेतयोनि में नहीं, देवता या राक्षस नहीं, गूँगे या निर्बुद्धिक नहीं—बल्कि सुन्दर मनुष्य का जन्म पाया है। इसलिये

1. प्रभास्वरं परमार्थसत्यम्। (गु० स० प्र०, पृ० 33, 71)

यदि इसमें परहित कामना मन में न जगी तो फिर कहाँ जगेगी। क्या इस प्रकार का समागम—समस्त शुभ संयोगों की एकत्र प्राप्ति प्रतिदिन होती है ?

बोधिचर्यावतार में भी कहा है--

क्षणसम्पदियं सुदुर्लभा प्रतिलब्धा पुरुषार्थसाधनी।
यदि नात्र विचिन्त्यते हितं पुनरप्येष समागमः कुतः ॥ (1.4)

भागवत में भी कहा है कि सुदुर्लभ मानव-शरीर रूपी नौका सुलभ हो गई है, इस नैया को खेने के लिए सद्गुरु जैसा कर्णधार भी प्राप्त हो गया है, भगवान् की कृपा की अनुकूल हवा तो चल ही रही है, इस समय इन सुन्दर संयोगों के प्राप्त होने के दुर्लभ क्षण में यदि मनुष्य भवसागर को न तर सका, तो वह आत्मघाती के अतिरिक्त और कुछ नहीं है—आत्महा स्वयं अपने आपको मार डालता है—

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं
प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम्।
मयानुकूलेन समीरणेरितं
पुमान् भवाब्धि न तरेत् स आत्महा ॥ (भाग० 11.20.17)

किन्तु बौद्ध साधक अपने आपको तारने के लिये उतना चिन्तित नहीं रहता, जितना कि प्राणिमात्र की दुःख-निवृत्ति के लिये। यह सन्त (साधक) मुक्ति या निर्वाण नहीं, बल्कि सर्वप्राणियों का क्लेशशमन करना चाहता है। बोधिचित्त का साधक अपने निर्वाण की चिन्ता नहीं करता। वह अपने पुण्य का एक ही उपयोग करना जानता है—यदि मैंने कुछ पुण्य किया हो, कुछ शुभ आचरण किया हो, तो उससे समस्त जगत् के प्राणियों का दुःख दूर हो जाय—

एवं सर्वमिदं कृत्वा यन्मयासादितं शुभम्।
तेन स्यां सर्वसत्त्वानां सर्वदुःखप्रशान्तिकृत् ॥ (बो० च० 3.6)

केवल इतना ही नहीं वरन् वह परिनिर्वाणाभिमुख बुद्धों से हाथ जोड़कर प्रार्थना करता है कि वे निर्वाण प्राप्त करने में जल्दी न करें, अनन्त कल्पों तक ठहरें, ताकि संसार में अंधेरा न हो जाय और जगत् के दुःखी प्राणी भटक-भटक के मरने न लगें—

निर्वातुकामांश्च जिनान् याचयामि कृताञ्जलिः।
कल्पाननन्तांस्तिष्ठन्तु मा भूदन्धमिदं जगत् ॥ बो० च० 3.5 ॥

इस प्रकार अध्यात्म की अन्तःज्योति से अनुप्राणित तिब्बत (भोट देश) के गुरुओं के उपदेशों में भी प्रभास्वर योग को इस प्रकार समझाया गया है—जिस तरह अ-रूप का ज्ञान अगम्य (दुर्बोध) है, उसी तरह कर्म और पुनर्जन्म से छुटकारा पाना भी कठिन है तथा इस प्रभास्वर प्रकाश का साक्षात्कार (सूर्य, चन्द्र, अग्नि और रत्न की मिश्राभा से प्रदीप्त) भी अननुमेय है। प्रभास्वर किरण की अनन्त ज्योति अन्धकार पर अपना जाल पसारती है। जहाँ से सूर्य का प्रकाश और ताप आता है, सूर्य के प्रकाश से चन्द्रमा प्रदीप्त है और चन्द्रमा से शीतलता तथा उसी प्रभास्वर-

मय प्रकाश से सर्वव्यापी बोधि (प्रज्ञा) व्याप्त है। इस प्रकार सृष्टि के मूल में विद्यमान शून्यता प्रकृति की संभृत (दृष्टि या रूपविषयक) वस्तुओं को प्रदीप्त करती है। ठीक उसी प्रकार जगत् के समस्त व्यापार भी उसी के द्वारा परिचालित होते हैं।

प्रभास्वर योग प्रत्यभिज्ञान की यौगिक शिक्षा

प्रभास्वर प्रकाश योग की प्राथमिक साधनाओं में कुछ ऐसे महत्त्वपूर्ण कदम उठाये गये हैं, जिनसे साधनाभ्यास के समय उत्पन्न होने वाली साधक की सभी बाधाएँ दूर हो सकें और अनुकूल परिस्थितियाँ प्रभास्वर प्रकाश पहचानने में आ सकें। यह क्रम स्वप्नयोग के समान ही है। इसके अतिरिक्त साधक को अच्छा और पुष्ट भोजन करना चाहिये। अपने शरीर को शुद्धि (अभ्यंजन चिकित्सा), किसी शान्त स्थान में वास, अपने बिन्दु के रक्षण के साथ सब समय उसे सहज और विनम्र होना चाहिये। इस ध्यानाभ्यास के समय साधक को 1/3 भाग चण्डाली के अभ्यास में लगाना चाहिये और दो तिहाई भाग प्रभास्वर प्रकाश योग में लगाना चाहिये। साधक (योगी) को पहले नीले वज्रधर को उसकी मुद्रा के साथ हृदयचक्र में बैठे हुए देखना चाहिये और उनसे सहज प्रकाश को विकीर्ण करने के लिये प्रार्थना करनी चाहिये। तब साधक (योगी) को नीले हूँ को हृदयचक्र में देखना चाहिये और प्राणवायु को रोके रखना चाहिये चित्त (मन) में हूँ को काफी देर तक रोकना चाहिये, तब सब बाह्य जगत् उसके शरीर में तथा शरीर (देह) हूँ में और हूँ नाद में और नाद विराट् शून्य में विलीन हो जायगा। तत्पश्चात् साधक शून्य पर ध्यान लगाये और अपने श्वास को रोके। इस समाधि से उठने पर साधक (योगी) को अपने मायिक संरक्षक बुद्ध (इष्टदेव) का दर्शन करना चाहिये और इसी तरह उसे अन्य देवी-देवों का भी।

कुछ लोग यह बताते हैं कि यह क्रिया (अभ्यास) केवल रात में की जाय, लेकिन वास्तव में सच यह है कि यदि कोई साधक पूरे दिन अभ्यास करता है, तो वह पूर्णरूप से प्राण और चित्त (मन) के अधिकार का विस्तार (वृद्धि) प्रबल रूप से कर सकता है और प्रभास्वर प्रकाश के स्फुरण को स्थिर कर सकता है। इससे उसके लिये यह बहुत सरल हो जायगा कि वह सोते वक्त प्रकाश को पहचान सके। इसके अतिरिक्त प्राणवायु को रोकने से साधक को और भी बहुत से लाभ प्राप्त होते हैं।

अन्य तरीकों से प्रभास्वर प्रकाश का प्रत्यभिज्ञान करना बड़ा कठिन है और वह प्रभास्वर प्रकाश जो ज्ञात हो गया है, बहुत देर तक नहीं रह सकता। जो साधक इन साधनाओं को करता है, वह प्राणवायु को मध्यनाड़ी (सुषुम्ना नाड़ी) में लाकर स्पष्ट करता है। इस प्रकार प्रभास्वर प्रकाश योग का यह महत्त्वपूर्ण अभ्यास कहलाता है।

सोते समय प्रभास्वर प्रकाश को पकड़ना

योगी जन चार प्रकार के शून्य को प्रकाशित (उद्घाटित) करते हैं। वे मध्यनाड़ी (अवधूती) में प्राण को दिन में एक जगह एकत्रित करते हैं। तब वे सोते में भी वैसा कर सकते हैं, जब वे हृदयचक्र में हूँ पर एकाग्र होने लगें। सोने के पहले प्रभास्वर प्रकाश को पकड़ने का सबसे उचित समय मध्य रात्रि नहीं, बल्कि गहरी निद्रा है। प्रातःकाल में जब निद्रा हल्की हो तो

वह सबसे अच्छा समय है कि बगल में दोनों घुटनों के बल झुककर पुनः लेट जाय और इस साधनाभ्यास को जारी रखें।

यहाँ प्रभास्वर प्रकाश योग के साधनाभ्यास के दो मौलिक तथ्य हैं—(1) पाँच बीजाक्षरों को पाँच पत्रों वाले कमलपत्र पर स्थित हृदयचक्र में देखना (2) और श्वास को रोके रखना।

नींद आने के पहले साधक (योगी) को बार-बार यानी बीसों बार यह सोचना चाहिये कि सहज प्रभास्वर प्रकाश उसमें से निकल रहा है, अपने प्रकाश के रहस्योद्घाटन (प्रकटीकरण), वृद्धि (संवर्धन) तथा उपलब्धि (सिद्धि) के क्रम से। तब जब वह सम्पूर्ण शरीर को हूँ में अन्तर्लीन करके और हूँ को प्रभास्वर प्रकाश में लीन कर चित्त (मन) को एकाग्र करे। जब वह थोड़ा नींद में आने लगे तो उसे 'अ' पर ध्यान लगाना चाहिये। वह जब बिलकुल सो जाय तो 'नु' पर और अत्यन्त गहरी निद्रा में 'त' पर और जब वह (साधक) सोने ही लगे तब 'र' पर, 1/3 नींद आ जाने पर या 1/2 पर बेहोश हो जाने पर 'हूँ' पर ध्यान लगावे।

प्रारम्भ में (साधक) को अन्तिम दो बीजाक्षरों का अधिग्रहण करना कठिन होता है, क्योंकि वह तुरन्त सोने से प्रथम तीन बीजाक्षरों का ध्यान करते ही निद्रा में गिर पड़ता है, लेकिन बार-बार के अभ्यास करने पर धीरे-धीरे वह वैसा करने में समर्थ होने लगता है। जो साधक निद्रा की अचेतन अवस्था से परिचित नहीं रहता, उसे दिन में कठिन साधनाभ्यास करना चाहिये, जिससे कि वह और अधिक समाधि की शक्ति को प्राप्त कर सके। यह उसे अचेतन अवस्था में रहने के लिये समर्थ बनायेगा और कुछ सीमा तक प्रभास्वर प्रकाश की शिक्षाओं को प्राप्त करेगा, जिसे वह पूर्व में प्रतिभासित नहीं कर पाया है।

कुछ शिक्षाएँ बताती हैं कि यदि साधक फिर भी प्रभास्वर प्रकाश को नहीं पहचान सका, तो वह तीन दिन के लिये रात और दिन सोना बन्द करे, अर्थात् नींद का संपूर्ण परित्याग करे तथा दुबारा इसके लिये प्रयत्न करे।

जो चारों प्रभास्वर प्रकाशों की शून्यता को स्पष्ट (प्रकाशित) करता है, उदाहरण के लिये जिसमें प्रभास्वर प्रकाश की अभिव्यापकता, प्रभास्वर प्रकाश की वृद्धि या संवर्धन, प्रभास्वर प्रकाश की उपलब्धि या सिद्धि होती है और सहज प्रकाश स्थूल और सूक्ष्म सांसारिक विचारों को समयानुकूल बनाता है तथा विवेकशील चित्त (मन) उसे पार कर जाता है, तब वह निद्रा के विशुद्ध प्रभास्वर प्रकाश को सामने देखता है। वह इतना पारदर्शी और स्पष्ट होता है, जितना बादलहीन आकाश। यह अति उत्कृष्ट अनुभव है। इसके अलावा दूसरी स्थिति में हम इसे स्पष्ट अनुभव कहते हैं, या लघुतर (कम) प्रभास्वर प्रकाश योग कहते हैं, जिसमें योगी चार प्रकार की शून्यताओं का निराकरण होने से सभी सांसारिक अभिव्यक्तियों (परिबोधों) की ऊँचाई को नहीं पहचान सकता, पर वह अत्यधिक तन्द्रा और पारदर्शिता की चकाचौंध को पार कर जाता है। इसके पश्चात् दूसरा यह निम्न प्रकार का अनुभव है, जिसमें योगी पूर्णता का या लघुतर (कम) प्रभास्वर प्रकाश का भी अभिज्ञान नहीं करता, लेकिन एक स्पष्ट और पारदर्शी परा प्रत्यक्ष चित्त (मन) का नींद की अवस्था में स्वप्नोत्पत्ति के पूर्व अनुभव करता है। यह अनुभव सम्बन्धात्मक प्रभास्वर प्रकाश का है।

यदि कोई साधक दिन में अभ्यास करता है और उससे उसे स्थिर समाधि प्राप्त हो गई है, तो उसकी शक्तियाँ दिन-रात चलेंगी और उसी में नींद और स्वप्न की विभिन्न अवस्थाएँ पैदा होंगी। ऐसी स्थिति में साधक (योगी) केवल स्वप्न ही नहीं देखता और यदि देखता है तो वह उसे तुरन्त पहचानने की स्थिति में रहता है। लेकिन कुछ गुरुओं (वज्राचार्यों) का यह भी कहना है कि यह नींद का प्रभास्वर प्रकाश नहीं, बल्कि समाधि-अनुभव है। नींद की अवस्था में यह सत्य हो सकता है। यदि कोई साधक ऐसी साधना करे तो वह बहुत शीघ्र ही अपने प्रभास्वर प्रकाश को और लघुतर (कम) प्रभास्वर प्रकाश को पहचान कर अपने अनुभव में वृद्धि करेगा। यद्यपि प्रभास्वर (प्रकाश) योग को पहचानने की अनेक विधियां हैं, परन्तु ऊपर बताई विधियां इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये पूर्णतया पर्याप्त हैं। इसलिये साधक (योगी) को किसी एक तरीके का अनुगमन करना चाहिये, जिसे वह पूर्णतया सहायक समझता है।

चार शून्यताओं की समीक्षा

चार प्रकार की शून्यता,[1] चार प्रकार के प्रभास्वर प्रकाश और चार प्रकार के आनन्द,[2] प्रभास्वर प्रकाश योगानुभव के हृदय हैं। जाग्रत् अवस्था की साधनाओं में, दिन में मध्य नाड़ी में प्राणवायु के एकत्रीकरण के रूप में इनका परिचय होता है और जो साधक ऐसा कर सकते हैं, वे चतुर्थ शून्यता या सहज प्रभास्वर प्रकाश पर ध्यानस्थ हो पाते हैं।

चार प्रकार की शून्यताओं के प्रत्यभिज्ञान की निम्नलिखित विधियाँ हैं—

1. रात्रि में प्रभास्वर प्रकाश योग की साधना के समय साधक (योगी) को पहले हृदयचक्र में स्थित कमलपत्रों के एक पत्र 'आ' पर ध्यान लगाना चाहिये। इस साधनाभ्यास के द्वारा प्राणवायु के पंचस्कन्ध मध्यनाड़ी में सम्मिलित होते हैं, जिसके परिणामस्वरूप धूँआ, चमत्कार (मृगमरीचिका) और प्रज्वलित प्रकाश (जुगनू-प्रकाश) आदि लक्षण उदित होंगे। जब वह सोता हुआ यह अनुभव करे तो उसे 'नु' पर ध्यान करना चाहिये। जहाँ पर अधिक प्राण इकट्ठे होंगे, वहाँ भेदबोधक (विभेदक) स्थूल विचार समाप्त होंगे और मौलिक शून्यता या प्रकाशोद्भव (प्रभास्वर प्रकाश का उद्गम) होगा तब साधक अनुभव करेगा कि वह बादल रहित आकाश में चमकते हुए चाँद को देख रहा है। जब साधक (योगी) और गहरी निद्रा में सो जाय तो उसे 'त' पर ध्यानस्थ होना चाहिये। इससे उसकी प्राणवायु वहाँ इकट्ठी होगी, जिससे सूक्ष्म विभेदक विचार समाप्त हो जायँगे।

2. दूसरी गहन परम शून्यता है। इससे प्रभास्वर प्रकाश की वृद्धि (संवर्धन) होगी तथा साधक (योगी) समझेगा कि वह बादल रहित आकाश में सूर्य की किरण को देख रहा है। जब वह और अधिक सो जाय, तो उसे 'र' पर ध्यानस्थ होना चाहिये जहाँ सभी प्राण इकट्ठे हों, वहाँ प्रायः सूक्ष्म विभेदक विचार समाप्त हो जायँगे।

---

1. शून्यचतुष्टयम्—शून्य-अतिशून्य-महाशून्य-सर्वशून्यमिति चतुःशून्यस्वरूपेणपत्रचतुष्टयम्। (दो० को० व्या०, पृ० 151)
2. चत्वार आनन्दाः—आनन्दः, परमानन्दः, विरमानन्दः, सहजानन्दश्चेति (हे० त०, 1.1.28)

3. तीसरी महाशून्यता है, इससे प्रभास्वर प्रकाश की पूर्णता का उद्‌गम होगा। तब साधक अनुभव करेगा कि बादल रहित आकाश में स्वच्छ प्रभास्वर प्रकाश का गहन अन्धकार के साथ आलिंगन हो रहा है। अन्त में जब साधक (योगी) पूर्णरूप से सो जायगा या अचेतन हो जायगा, तो वह 'हूँ' पर ध्यानस्थ होगा। उस समय उसके सारे प्राण वायु की सिद्धि होगी और उसके अधिकांश सूक्ष्म विभेदक विचार समाप्त हो जायँगे।

4 चतुर्थ पूर्णशून्यता है, जिसे सहज प्रभास्वर प्रकाश भी कहते हैं। इसके उदित होनेपर साधक अनुभव करेगा कि वह स्वच्छ आकाश में प्रातःकाल की तीनों मलिनताओं (सूर्य, चन्द्र और सांध्य प्रकाश) के स्वरूप से मुक्त हो गया। इस प्रकार ये चार शून्यताएँ प्रभास्वर प्रकाश के निद्रित क्षण हैं, जिन्हें साधक (योगी) को उनका प्रत्यभिज्ञान और अभ्यास करना चाहिये।

प्रारम्भ में साधक इन चार शून्यताओं को नहीं पहचान पायगा, लेकिन उपर्युक्त विधियों द्वारा लगातार अभ्यास करने से वह ऐसा कर लेगा।

जो साधक चार शून्यताओं को पकड़ने में निपुण (प्रवीण, कुशल) नहीं हैं, उन्हें इस योग का हल्की निद्रा के समय अभ्यास करना चाहिये, पर जो साधक निपुण हों, उन्हें गहरी नींद में अभ्यास करना चाहिये और वे जो पूर्णरूप से प्रभास्वर प्रकाश को पकड़ने में समर्थ नहीं हैं, उन्हें नियमित विधि से इस साधना का अभ्यास करना चाहिये। इसके विपरीत की उपलब्धि में साधक कठिनाई महसूस करेगा। उदाहरण के लिये सहज प्रभास्वर प्रकाश से तृतीय, द्वितीय और तब मौलिक प्रभास्वर (प्रकाश) को पकड़ना चाहिये। निरन्तर साधनाभ्यास को यह मौलिक विधि बहुत महत्त्वपूर्ण है।

यदि कोई साधक (योगी) समाधि के समय प्रभास्वर प्रकाश को प्राण के विक्षुब्ध होने के कारण बलपूर्वक उद्‌गमन होने (सामने आने) के लिये बाध्य करता है, तो उसे हृदयचक्र में 'हूँ' पर ध्यानस्थ होना चाहिये, जिससे उसकी समाधि में पुनः स्थिरता आ सके। यदि वह भी सहायक नहीं है, तो उसे लघुतर (कम) प्रभास्वर प्रकाश में ही ध्यान लगाना चाहिये। यदि उस पर भी उसे लघुतर प्रभास्वर प्रकाश से बलात् उठा दिया जाय, तो उसे मायिककाय या स्वप्नयोग का अभ्यास करना चाहिये। लेकिन इसे उचित ढंग से करने के लिये साधक को पहले अपने प्राण को मध्यनाड़ी में एकत्रित करना चाहिये तथा चारों शून्यताओं को दिन के साधनाभ्यास में खोल देना चाहिये। केवल तब जब वह उस अवस्था में पहुँच जाय कि वह पूर्णरूप से प्रभास्वर प्रकाश को रात में पकड़े रख सकता है। कम प्रगति प्राप्त साधक (योगी) प्रथम या द्वितीय प्रभास्वर प्रकाश को ही पहचान सकेंगे, पर तृतीय को और सहज प्रभास्वर प्रकाश को पहचानने में उन्हें बहुत कठिनाई का अनुभव हो सकता है।

शयनकक्ष में सोने के लिये जाने से पूर्व ही यदि साधक सचेत रहे और प्रभास्वर प्रकाश को पकड़ने की तीव्रतम इच्छा पैदा करे तथा 'हूँ' पर ध्यानस्थ हो हृदयचक्र में प्रदीप्त प्रभास्वर प्रकाश को सम्पूर्ण शरीर में अभिव्याप्त करते हुए उसे रोके रखे, तो वह लघुतर (कम) प्रभास्वर प्रकाश को देखने और समझने में समर्थ होगा।

बिना स्वप्न के हल्की निद्रा में साधक चित्त (मन) की प्रकृति को चमकते देखेगा तथा बिना किसी बाधा के आर-पार (पारदर्शी) शून्य की तरह रिक्त (खाली) देखेगा। उसको जागृति उतनी स्पष्ट होगी, जैसे वह (दिन में) जगा हो। यद्यपि वह अपने असन्तुलित विचारों से छुटकारा नहीं पा सकता और कुछ देर में उसके प्रदीप्त ज्ञान (प्रकाशक विचार) भी स्वप्न के साथ उदित होंगे। यदि ऐसा होने लगे तो उसे फिर भी 'हूँ' पर ध्यानस्थ होना चाहिये तथा प्रभास्वरता के ज्ञान (जागृति) को इस भाँति रखना चाहिये कि वह प्रभास्वर प्रकाश को नियन्त्रित कर सके। जो साधक गहरी नींद में प्रभास्वर प्रकाश को नहीं जान पाते, उन्हें हतोत्साह होने की जरूरत नहीं, बल्कि इनके स्थान पर उसे जानने के लिये दुबारा प्रयत्न करना चाहिये ऐसा करने पर धीरे-धीरे उस पर वह विजय (सफलता) पायगा। यदि प्राण के विक्षोभ (गड़बड़ी) से कोई स्वप्न पैदा हो तो उसे इस स्वप्न दर्शन को संरक्षक बुद्ध (इष्टदेव) की अपनी मण्डली के साथ संयुक्त कर देना चाहिये, तब एक बार फिर उसे समाप्त कर (भंग कर) महाशून्यता में विलीन कर देना चाहिये।

साधक को यह अवश्य जानना चाहिये कि कम प्रभास्वर प्रकाश (लघुतर प्रभास्वर प्रकाश) स्वप्न का सहज प्रभास्वर प्रकाश नहीं है, पर बाद वाली चतुर्थ शून्यता या सहज प्रभास्वर हर प्रकार के विभेदक या क्षुभित विचारों (चित्तों) से रहित है। जब कि पहला बनावटी अल्प प्रभास्वर प्रकाश है तथा विभेदक संक्षुभित विचारों से मिश्रित, अर्थात् मिला हुआ है, लेकिन यदि साधक कम प्रभास्वर योग का अभ्यास भी दृढता पूर्ण और शक्ति सम्पन्न होकर कर सका, तो सहज प्रभास्वर प्रकाश को प्राप्त करने में वह अवश्य सफल होगा। वर्तमान समय में तिब्बत में बहुत से ऐसे योगी हैं, जो इस अनुरूप प्रभास्वर प्रकाश को प्राप्त करने में समर्थ हैं। यद्यपि वे साधक, जो इसका ठीक से अभ्यास करते हैं, वे भी कम प्रभास्वर प्रकाश को पकड़ सकते हैं। इसलिये इनकी विभेदकता को जानना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

तीन मौलिक प्रभास्वरताओं के ऊपर टिप्पणियां

तन्त्र की शिक्षा के अनुसार प्रभास्वर प्रकाश के तीन वर्ग बनाये जा सकते हैं—

1. आश्रय प्रभास्वरता
2. मार्ग प्रभास्वरता
3. फल प्रभास्वरता

1. आश्रय प्रभास्वरता

यह वह सहज प्रभास्वरता है, जो हर समय साधक के बिना बोध या अबोध के रहती है। सुषुप्ति की प्रभास्वरता और मृत्यु की प्रभास्वरता इस प्रकार के वर्ग में आती है।

2. मार्ग प्रभास्वरता

यह शून्यता का साक्षात् अनुभव, चार प्रकार के प्रभास्वर या शून्यताएं हैं, जो मध्यनाड़ी में प्राण के पहुँचते ही खुल जाती हैं। यह प्रज्ञा अभेदात्मक (अभेदमूलक) अनुत्पन्न शून्यता का अनुभव है, जो ज्ञाता और ज्ञेय के द्वैत से परे है।

3. फल प्रभास्वरता

यह दोनों का एक में परम दीप्तिमय प्रभास्वर प्रकाश का अनुभव है, जो बुद्धत्व की पूर्णता का अवबोध है।

नींद की प्रभास्वरता को कई भागों में बाँटा जा सकता है— वह जो गहरी निद्रा (नींद) में बिना विषयबोध के पहचान में आती है, उसे सुषुप्ति की प्रभास्वरता कहते हैं और जो स्थूल और सूक्ष्म विषयों के साथ पहचान में आती है, ऐसी प्रभास्वरता को हल्की नींद की प्रभास्वरता (भावस्वरता) कहते हैं। जैसा कि पहले बतलाया गया है स्वप्नयोग में साधक को देखना चाहिये कि वह अन्तराभव को समझने में पूर्ण विश्वस्त और प्रभुत्व सम्पन्न है या नहीं ? वह अपने से स्वयं पूछे कि वर्तमान अनुभव पर क्या मैं मृत्यु की प्रभास्वरता पर आधिपत्य कर सकता हूँ ? जब उसे यह समझ में आ जाय, तब वह नींद की चारों शून्यताओं पर प्रभुत्व प्राप्त कर सकता है, साधक मृत्यु के समय चारों शून्यताओं को पहचानने में भी सुनिश्चित हो सकता है और उसके लिये मृत्यु इस मार्ग की बहुत ही सहयोगी सिद्ध हो सकती है।

इस प्रकार प्रभास्वर योग की साधना में सांसारिक चञ्चलता और भेद्य-भेदकता को शुद्ध कर सहज प्रभास्वर प्रकाश की दीप्त प्रज्ञा के आधार पर स्वतः प्रज्ञा का अनुभव होता है। साधक अपने अशुद्ध सांस्कारिक विचारों को समाप्त कर सकता है, सूर्य और मातृप्रकाश को एक दीप्ति प्रभास्वर प्रकाश में मिला सकता है और सभी पूर्ण एवं स्वतः उत्पन्न प्रभास्वर प्रकाशों को एक में सम्मिलित करा सकता है। इस प्रकार साधक पूर्ण धर्मकाय[1] और रूपकाय[2] का अधिगम करेगा और संसार की समाप्ति के पहले बिना किसी प्रयत्न के मानवमात्र के असंख्य रूपों को उत्पन्न करने में सहायता करेगा।

---

1. धर्मकायः—हृच्चक्रं धर्मकायः, हूंकारादिरूपस्कन्धधातूपसंहारकत्वात्।

(व० ति० टी०, पृ० 78)

प्राङ्निर्णीतः परमसुखस्वभावो हेतुप्रत्ययनिरपेक्षो यः स धर्मकाय इत्युच्यते।

(व० ति० टी०, पृ० 85)

2. रूपकाय—शरीर का आकार या आकारित शरीर, जो दोनों प्रकार के दिव्य कायों (संभोग काय और निर्माण काय) की ओर संकेत करता है।

रूपकायादयो भावास्तत्त्वरूपं यथा न ते।
तद्वारणं कृतं पूर्वं रूपत्वं च ततः स्थितम् ॥ (ज्ञानसिद्धि 12:2)

महामुद्रा दर्शन :: परम्परागत साधनाविधि–२

—डा० टशी सम्फेल—

['धीः' के नवें अंक में महामुद्रा नाम की निरुक्ति, उसके पर्याय भेद और सूत्र तथा तन्त्र ग्रन्थों में प्रतिपादित महामुद्रा के स्वरूप आदि पर संक्षेप में प्रकाश डाला गया था। उसी क्रम में यहाँ महामुद्रा की परम्परा और उसकी विभिन्न साधनाविधियों पर संक्षेप में विचार किया जा रहा है।]

महामुद्रा की परम्परा

महामुद्रा का दर्शन क्या है, इसकी चर्चा पहले की जा चुकी है। अब यहाँ उसकी परम्परा की संक्षेप में चर्चा करने जा रहे हैं। इस परम्परा को हम तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं। जैसे—

प्रथम—सूत्रसम्मत महामुद्रा की परम्परा।

द्वितीय—तन्त्रनयसम्मत महामुद्रा की परम्परा।

तृतीय—सूत्र और तन्त्र का युगल स्वरूप एवं सहज साधना के साधकों द्वारा स्थापित महामुद्रा की परम्परा।

प्रथम परम्परा

इन तीनों आम्नायों का अपना पृथक्-पृथक् एवं स्वतन्त्र मत भी है। जैसे कि सूत्र आम्नाय के अनुसार यह माना जाता है कि बुद्ध ने बोधि प्राप्ति के 12 वर्ष पश्चात् गृध्रकूट पर्वत में पारमितायान का उपदेश दिया। उसी उपदेश पर प्रमुख रूप से आधारित महामुद्रा नय को सूत्रानुसार महामुद्रा देशना की परम्परा कहते हैं, अर्थात् बुद्ध द्वारा पहले और दूसरे धर्मचक्र प्रवर्तन में उपदिष्ट शून्यता ही यहाँ महामुद्रा है और यही प्रथम परम्परा है। इस परम्परा के अनुसार महामुद्रा का स्वरूप वही है, जो प्रज्ञापारमिता सूत्रों में दिखता है।

द्वितीय परम्परा

बुद्ध के द्वारा तन्त्र की देशना के सम्बन्ध में विद्वानों में अनेकानेक मतभेद हैं। कुछ विद्वान् सेकोद्देश टीका के इस वचन को—

गृध्रकूटे यथाशास्त्रं प्रज्ञापारमितानये[1]।
तथा मन्त्रनये प्रोक्ता श्रीधान्ये धर्मदेशना ॥

उद्धृत करते हुए द्वितीय और तृतीय धर्मचक्र प्रवर्तन का एक ही काल मानते हैं। लेकिन जब तन्त्रों की देशना से सम्बद्ध निदानों को देखते हैं, तो हम बुद्ध को पृथक्-पृथक् विनेय जनों के लिये पृथक्-पृथक् देशना करते हुए पाते हैं। जैसे नामसंगीति की टिप्पणी अमृतकणिका में तन्त्रयान की देशना एवं स्थान के सम्बन्ध में लिखा है—

"इह खलु श्रीधान्यकटके महाचैत्यस्थाने नानातन्त्रश्रवणार्थिभिरध्येषितः श्रीशाक्यसिंहो नाम बुद्धो भगवान् चैत्रपूर्णिमायां श्रीधर्मधातुवागीश्वरमण्डलं तदुपरि श्रीमान् नक्षत्रमण्डलमादिबुद्धं विस्फार्य तस्मिन्नेव दिने बुद्धाभिषेकं दत्त्वा देवादिभ्यः सर्वमन्त्रनीतिबृहल्लघुतन्त्रभेदेन देशितवान्"[2]।

अर्थात् धान्यकटक में नाना तन्त्रों के श्रवणार्थियों द्वारा अध्येषणा करने पर शाक्यसिंह (बुद्ध) ने चैत्र पूर्णिमा के दिन धर्मधातु वागीश्वर मण्डल के ऊपर नक्षत्र मण्डल में आदिबुद्ध को प्रस्फुटित कर उसी दिन अभिषेक प्रदान कर देवताओं को बृहत् एवं लघुतन्त्र के भेद से देशना की। उसी प्रकार नड़पाद ने सेकोद्देशटीका में कहा है—

"क्व कस्मिन् मण्डले कुत्र स्थितः ? कया परिषदा परिवृतो भगवानाह श्रीधान्ये नियतमन्त्र-नयदेशनास्थाने महासुखवासे वज्रधातुमहामण्डले वज्रसिंहासने स्थितः"[3]।

इसी प्रकार क्रिया, चर्या, अनुत्तर और अनुत्तर योगतन्त्रों के निदानों को देखने से भी ज्ञात होता है कि तन्त्र की देशना विभिन्न स्थानों में हुई है। तिब्बत के महान् इतिहासकार तारनाथ ने भी लिखा है—"सूत्र (और) तन्त्र के देश, काल और शास्ता का भेद नहीं है। मनुष्य लोक में महायान सूत्रों के साथ प्रायः तन्त्रों की भी उत्पत्ति हुई। अधिकतर अनुत्तर तन्त्र तो सिद्धाचार्यों द्वारा क्रमशः लाये गये। उदाहरण के लिये श्री सरह (769-809) के द्वारा बुद्धकपाल, लूईपा (769-809) के द्वारा योगिनीसंचर्या आदि, कम्बलपा और सरोरुहवज्र द्वारा हेवज्र, कृष्णचारिन् द्वारा सम्पुट-तिलक, ललितवज्र द्वारा कृष्णयमारि, गम्भीरवज्र द्वारा वज्रामृत, कुक्कुरिपा(द) द्वारा महामाया और पिंटोपा द्वारा कालचक्र लाया गया आदि-आदि[4]।

तृतीय परम्परा

द्वग्सपो टशी नामग्याल ने महामुद्रा चन्द्ररश्मि नामक ग्रन्थ में लिखा है—सम्यक् सम्बुद्ध ने तीन प्रकार के गोत्र (से युक्त त्रिविध विनेय लोगों) के अध्याशय के अनुसार तीन बार धर्मचक्र प्रवर्तन किया। तत्पश्चात् परिनिर्वाण के पूर्व सभी धर्मों के रहस्यगत गूढार्थ की देशना का उपयुक्त

---

1. सेकोद्देशटीका, पृ० 3, गा० ओ० सी०, बड़ौदा।
2. अमृतकणिका, नामसंगीतिटिप्पणी, देखे—के० उ० ति० शि० संस्थान, सारनाथ से प्रकाशित 'धीः' अंक 3, पृ० 114
3. सेकोद्देशटीका, पृ० 3, गा० ओ० सी०, बड़ौदा।
4. लामा तारनाथकृत "भारत में बौद्ध धर्म का इतिहास", सन् 1971 में काशीप्रसाद जायसवाल रिसर्च इंस्टिट्यूट से प्रकाशित, पृ० 145-46.

अवसर देखकर दक्षिण में बेताहपुर[1] में प्रकट होकर वहीं मञ्जुश्री और अवलोकितेश्वर द्वारा अनुरोध करने पर उनको महामुद्रा का उपदेश दिया तथा भविष्य में इस गूढार्थ को प्रकाशित करने वाले सरह और नागार्जुन आदि आयेंगे, ऐसी भविष्यवाणी भी की थी।

उसके कुछ समय बाद मञ्जुश्री ने देवपुत्र रत्नमति के और अवलोकितेश्वर ने सुखनाथ के रूप में प्रकट होकर सरह को अनुगृहीत किया। इस प्रकार सरह, नागार्जुन, शबरीपाद, मैत्रीपाद, मरपा, मिलारस्पा और द्वग्सपो रिन्पोछे आदि इस परम्परा के प्रमुख आचार्य रहे हैं[2]।

साधना पद्धति

कहा जा चुका है कि महामुद्रा की साधनाविधियाँ तीन प्रकार की होती हैं—

1. सूत्रनय के अनुसार महामुद्रा की साधनाविधि।
2. तन्त्रानुसार महामुद्रा की साधनाविधि।
3. सूत्र और तन्त्र के युगल स्वरूप एवं सहज साधकों द्वारा स्थापित महामुद्रा की साधना-विधि।

1. सभी धर्मों की प्रकृति महामुद्रा है, ऐसा समाधिराज सूत्र[3] में उल्लिखित है। तदनुसार शून्यता ही महामुद्रा है। रत्नदारिकापरिपृच्छा सूत्र में भी "सभी धर्म गगन समलक्षण हैं" कहकर वस्तुओं की निःस्वभावता को ही महामुद्रा कहा गया है। मैत्रेय-अवतार सूत्र में भी कहा गया है— "कुलपुत्र! सभी धर्म शून्यता से मुद्रित हैं"[4]। अतः सूत्रालङ्कार, अभिधर्मसमुच्चय आदि अनेक ग्रन्थों में उपदिष्ट शमथ और विपश्यना की साधना के सभी धर्मों को चतुष्कोटिविनिर्मुक्त निष्प्रपञ्च प्रतिपादित कर या उसका बोध कर विषयीसमता में स्थिरीकरण ही महामुद्रा का साक्षात्कार करने की विधि है। इसी को महामुद्रा का दर्शन और साधना-विधि कहते हैं।

2. अचिन्त्याद्वयक्रमोपदेश में कहा है—

दर्पणालोकबिम्बेषु यथा सर्वं प्रदृश्यते।
तथैवाद्वयज्ञानेऽस्मिन् बुद्धबोधिरचिन्तिता ॥ 82 ॥

त्रैधातुकेषु सर्वेषु उत्पत्तिस्थितिहेतुभिः।
तत्सर्वमद्वयज्ञान उद्भूता सर्वजन्तवः ॥ 83 ॥

सागराः पर्वता वृक्षास्तृणगुल्मलताश्च ये।
विनिःसृताऽद्वयज्ञानाद् भ्रान्तिरत्र न विद्यते ॥ 84 ॥

---

1. वर्तमान गुण्टूर जिले के (आन्ध्र) अन्तर्गत आता है।
2. महामुद्रा चन्द्ररश्मि तिब्बती संस्करण, पृ० 53 क
3. स्दे० बृक० मृदो-स्दे (द D59 क)।
4. आर्य मैत्रीय प्रस्थान नाम महायानसूत्र (स्दे० बृक० सं० 198, मृदो० च० पृ० 280)

इसी प्रकार सरहपाद ने भी कहा है—चित्तरत्न के अतिरिक्त न सत्त्व है और न बुद्ध, आदि-आदि। अर्थात् सभी धर्म प्रकृति चित्त के विस्तार मात्र हैं। साधना में पिण्ड और भेदन (उत्पत्ति एवं प्रत्याहार) भेद के क्रम के अनुसार पहले स्वदेह की इष्टदेव के रूप में भावना कर फिर विलय द्वारा, अर्थात् उत्पत्ति और निष्पन्नक्रम की भावना पर जोर दिया जाता है। इसके लिये अभिषेक आदि की अनिवार्यता होती है। अभिषेक के अभाव में न सिद्धि लब्ध हो सकती है और न साधना का कोई विशेष फल। इस प्रकार सर्वप्रथम तन्त्र में प्रवेश के लिये कलश आदि चार अभिषेक प्राप्त करना आवश्यक होता है। उसके बाद उत्पत्तिक्रम और निष्पन्नक्रम की भावना करनी पड़ती है।

उत्पत्तिक्रम

मातृतन्त्र, पितृतन्त्र और अद्वयतन्त्र का भेद निष्पन्नक्रम की भावना विधि को लेकर हुआ है। तीनों में उत्पत्तिक्रम की भावना प्रायः समान है।

फिर भी साधक उत्पत्तिक्रम की भावना अपनी योग्यता एवं बुद्धि के अनुसार जरायुज, उपपादुक, अण्डज आदि के जन्म के अनुरूप चार योगों (योग, अनुयोग आदि) की किसी भी विधि से कर सकता है। साधक चाहे मातृ-पितृ आदि किसी भी तन्त्र का साधक हो, वह अपनी इच्छा के अनुसार उत्पत्तिक्रम की भावना करता है।

निष्पन्नक्रम

इसकी भावना के अनेक भेद हैं, जैसे पितृ-तन्त्र के अनुसार पंचक्रम द्वारा साधना करते हैं। पंचक्रम निम्नलिखित हैं :—

1. कायविवेक, वाग्विवेक } वज्रजाप[1] में सम्मिलित होते हैं।
2. चित्तविवेक
3. मायाकाय
4. प्रभास्वर
5. युगनद्ध की भावना।

मातृतन्त्र के अनुसार निष्पन्नक्रम के साधक को कर्ममुद्रा, समयमुद्रा, ज्ञानमुद्रा और महा-मुद्रा इन चार मुद्राओं के अनुसार भावना करनी होती है। अद्वयतन्त्र के अनुसार षडङ्ग योग की साधना की जाती है,[2] जैसे कि सेकोद्देश में कहा है—

---

1. श्वास-प्रश्वास और कुम्भक के साथ मन्त्र का तादात्म्य कर मन्त्रावृत्ति करना वज्रजाप कहलाता है।
2. कुन्ख्येन पद्मा करपो का वचन संग्रह, दार्जेलिङ्ग संस्करण भाग 22 ज (ङ) 342.

प्रत्याहारस्तथा ध्यानं प्राणायामोऽथ धारणा।
अनुस्मृतिः समाधिश्च षडङ्गो योग उच्यते[1] ॥

षडङ्ग योग के छः अङ्ग ये हैं—

1. प्रत्याहार
2. ध्यान
3. प्राणायाम
4. धारणा
5. अनुस्मृति
6. समाधि।

ये ही साधना के छः अंग हैं। यद्यपि यही संख्या एवं नाम पितृतन्त्र गुह्यसमाज आदि में भी आये हैं, लेकिन इनमें नाम समान होने पर भी अर्थ में अन्तर है। उपर्युक्त षडङ्ग योग, अद्वय-तन्त्र कालचक्र के अनुसार भाव्य षड्योग की ही साधना है और यह उसका मुख्य केन्द्रबिन्दु है। यहाँ इस साधना विधि पर चर्चा नहीं करनी है। यहाँ सामान्य तन्त्र की रूपरेखा तथा किस साधना विधि द्वारा महामुद्रा का साक्षात्कार किया जाता है, इसे कहा जायगा।

वज्रयानी साधकों की मान्यता है कि चित्त और प्राणवायु का विशेष सम्बन्ध है। अतः चित्त पर काबू पाने के लिये प्राणवायु पर नियन्त्रण करना आवश्यक होता है, जिसके लिये प्राणा-याम, वज्रजाप, चण्डाली आदि के आधार पर साधना की जाती है। इसलिये वज्रयानियों का कहना है कि प्रधानतया चित्तराज जागरित अवस्था में नाभि क्षेत्र में, स्वप्न में कण्ठचक्र में, निद्रा में हृदयकमल में, समापत्ति में उष्णीषचक्र में रहता है। अतः उसके साक्षात्कार के लिये चण्डाली, मायाकाय, प्रभास्वर आदि की भावना की जाती है। इसके लिये नाड़ी, वायु, बिन्दु आदि की भावना करनी पड़ती है। उसके अभाव में निष्पन्नक्रम की साधना सम्भव नहीं हो सकती। वज्रयान के अनुसार 'तन्त्र' शब्द के दो अर्थ लिये जाते हैं—नेयार्थ एवं नीतार्थ। तदनुसार इसका अभिधेयार्थ बोधिचित्त, महामुद्रा, सूक्ष्म प्राणवायु, सूक्ष्मचित्त, महासम्पन्नचित्त आदि है। ये सब पर्यायवाची शब्द हैं तथा ये ही साधना के तत्त्व हैं। इनका साक्षात्कार करना होता है। सामान्यतः साधना में वस्तु, मार्ग (हेतुगत उपाय) और फल तीन[2] प्रकार होते हैं, उसी प्रकार महामुद्रा के भी तीन भेद हैं। वस्तु मुद्रा के सम्बन्ध में दग्सपो टशी नामग्याल ने कहा है—"सामान्यतया सभी

---

1. श्री नडपाद (नारोपा) विरचित सेकोद्देशटीका, गायकवाड ओरियण्टल सिरीज, बड़ौदा से सन् 1941 में प्रकाशित, पृ० 30.

2. प्रबन्धं तन्त्रमाख्यातं तत् प्रबन्धं त्रिधा भवेत्।
आधारः प्रकृतिश्चैव असंहार्यप्रभेदतः ॥
प्रकृतिश्चाकृतेर्हेतुरसंहार्यं फलं तथा।
आधारस्तदुपायश्च त्रिभिस्तन्त्रार्थसंग्रहः ॥ (गुह्यसमाज, 18.33-34)

धर्मों की धर्मता आदितः निष्प्रपञ्च, प्रकृतितः प्रभास्वर शून्यता और भव एवं निर्वाण की अधिपति होती है और विषय-विषयीभाव विवर्जित प्राकृतिक चित्त (चित्त की धर्मता) है, वही आश्रय या वस्तु महामुद्रा है" ।

भव-निर्वाण की आदितः अनुत्पन्न, अनिरुद्ध एवं अस्थानता, अनादि प्रभास्वरता को श्रुत, चिन्ता एवं भावनामय मार्ग द्वारा अधिगत करना या उसकी अधिगति का मार्ग महामुद्रा कहा जाता है ।

इस प्रकार वस्तु (विषय वस्तु) महामुद्रा की मार्ग द्वारा भावना करने से आविर्भूत गगन-सदृश विशुद्ध अद्वैत ज्ञान की प्राप्ति होती है। उसी को फलमुद्रा कहा जाता है[1]। इस प्रकार तन्त्रनय का फल महामुद्रा का साक्षात्कार उपर्युक्त उत्पत्ति एवं निष्पन्न क्रमद्वय की साधना से ही सम्भव होता है, अन्यथा नहीं। जैसा कि तिब्बत के महान् साधक जें रङ्जुङ् दोर्जे कहते हैं—"जैसे काष्ठ में अग्नि सर्वदा विद्यमान रहती है। लेकिन उसे (काष्ठ को) काट कर या (उसे) फड़वाकर अग्नि उपलब्ध नहीं कर सकते, अग्नि उत्पन्न करने की साधना मात्र हाथ से दोनों काष्ठों की रगड़कर ही होती है, उसी प्रकार हमारे चित्त में स्वभावतः स्थित प्रज्ञोपाय के अद्वयज्ञान की, अर्थात् शून्यता एवं प्रभास्वरता का ज्ञान भी रसना और ललना नाड़ी में बहने वाली विकल्पयुक्त कर्मवायु को मध्यमा यानी अवधूती में प्रवेश कराने से ही आविर्भूत होता है। शुष्क तार्किक उपायों द्वारा इस ज्ञान को प्राप्त करना सम्भव नहीं है। उसी प्रकार पण्डित बलदेव उपाध्याय लिखते हैं—"इड़ा और पिंगला नाड़ी अथवा प्राण और अपान वायु का समीकरण ही 'एवं' है। इन दोनों की वैषम्य अवस्था में जगत् की उत्पत्ति होती है। इनकी समता प्रलय का सूचक एवं अद्वैत की अवस्था है। जगत् में दो विरुद्ध शक्तियाँ हैं, जो एक दूसरे का उपमर्दन कर प्रभुतालाभ करने के लिये सदा प्रयत्नशील रहती हैं[2] ।

अतः दोनों नाड़ियों के मेल के अभाव में जगत् का प्रवाह निरुद्ध नहीं हो पाता। इसके अवरोध के लिये तर्क-वितर्क चिन्तन आदि पर्याप्त नहीं हैं। जैसे चन्दन को भले ही हम काट-काट कर इतना सूक्ष्म कर डालें, जहाँ वह इन्द्रियों से अगोचर हो जाये, फिर भी उससे अग्नि प्रकट नहीं की जा सकती, मात्र चन्दनकाष्ठ को एक दूसरे से रगड़ कर ही अग्नि उत्पन्न की जाती है। उसी प्रकार पारमितायान में कथित मार्ग का जितना भी चिन्तन-मनन करें तथा सम्भारद्वय का जितना भी संचय करें, अन्ततोगत्वा द्वैत की धारणा का नाश करना है तो तन्त्र का अनुगमन कर इड़ा और पिङ्गला की रगड़ से मध्य अवधूती में सूक्ष्म प्राण-वायु का प्रवेश कराना ही होगा। अतः जिसने उपर्युक्त साधना द्वारा तत्त्वज्ञान का साक्षात्कार एवं अधिगम कर लिया हो, ऐसे गुरु के चरणों में रहकर चण्डाली आदि के आधार पर किये जाने वाले अभ्यास से ही साक्षात्कार करना चाहिये। इसी तथ्य को लक्ष्यकर हेवज्रतन्त्र में कहा गया है—"काय में महाज्ञान स्थित है"[3] इत्यादि।

---

1. महामुद्रा चन्द्ररश्मि, तिब्बती संस्करण, पृ० 43ख।
2. बौद्ध दर्शन मीमांसा, पृ० 325, तृतीय संस्करण 1978.
3. "लुस्-ल-येशेस्-छेन्पो-ग्नस्।" भूटान के खन्पो गेदुन रिन्छेन द्वारा रचित हेवज्रटीका, पृ० 25 ख में उद्धृत।

सूत्र एवं तन्त्र का युगल मार्ग

महामुद्रा की साधना विधि में सरहपाद एवं शबरिपाद आदि सिद्धों ने एक स्वतन्त्र मार्ग का भी प्रतिपादन किया है, जिसे आधुनिक विद्वान् राहुल आदि चिन्तक सहजयान की संज्ञा देते हैं। जिसमें सूत्रों में वर्णित षट्पारमिता, चार संग्रह वस्तुएं, शील आदि मार्गों के अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये अनिवार्य स्वीकार नहीं किया और इन साधनाओं पर जोर नहीं दिया गया है। सूत्रों में प्रतिपादित एकानेकवियुक्तत्व, प्रतीत्यसमुत्पाद आदि युक्तियों के आधार पर माध्यमिकों की शास्त्रार्थ विधि एवं तत्त्व प्रतिपादन विधि को भी, जो मूल माध्यमिककारिका आदि की गतागत परीक्षा, तथागत परीक्षा, स्कन्ध परीक्षा आदि में वर्णित है, एक-एक करके विशेष विचार न कर प्रधानतः यहाँ विषय की स्थापना में विज्ञानवादियों की तरह या तन्त्र की तरह विश्व को चित्त का विस्तार एवं वासना का प्रतिबिम्ब मात्र स्वीकार किया गया है तथा सभी धर्मों को चित्त का प्रतीतिमात्र माना गया है—

त्रैधातुकेषु सर्वेषु उत्पत्तिस्थितिहेतुभिः।
तत्सर्वमद्वयज्ञान उद्‌भूताः सर्वजन्तवः॥[1]

पुनः जैसे विज्ञानवादियों ने द्वतशून्यता की पारमार्थिक सत्ता स्वीकार की है, वैसा न मानकर उसकी व्याख्या पुनः प्रतीत्यसमुत्पन्न के रूप में कर निष्प्रपंच सिद्ध किया है। अतः यह मत विज्ञानवादी चिन्तन से भी आगे निकल जाता है तथा बाह्यार्थ को चित्त प्रतीति रूप मानकर चित्त को पुनः निष्प्रपञ्च प्रतिपादित करता है। परमार्थ में ये सहजयानी पूर्ण रूप से माध्यमिकों का अनुकरण करते हैं।

तन्त्रनय में आकर तत्त्व का साक्षात्कार करने वाले साधक के लिये पुनः अभिषेक आदि प्राप्त करने की बात कही गई है। उत्पत्तिक्रम आदि में कल्पना द्वारा स्फुरण और संहार की गई साधनाविधियों को भी बताया गया है, जो निष्प्रपञ्च ज्ञान की प्राप्ति एवं उसमें स्थित होने में बाधक होती है। अतः इन भारतीय सिद्धों ने, जिनमें सरहपाद आदि प्रमुख हैं, तन्त्रनय तथा सूत्रनय का अध्ययन छोड़कर सहज तत्त्व में स्थित होने के लिये कहा है। जैसे गुह्यसिद्धि में कहा गया है—

विहाय मानुषीं मुद्रां सर्वविक्षेपसंभवाम्।
महामुद्रां निषेवेत स्वदेहोपायसंयुताम्॥[2]
स्वसंवेद्या हि सा विद्या महामुद्रा परा शुभा।
निजदेहाश्रयस्थापि स्वल्पप्रज्ञैर्न दृश्यते॥[3]

सिद्ध मैत्रीपाद भी कहते हैं—"जो तत्त्व को जानना चाहे, उसे समझना चाहिये कि वह (तत्त्व) न तो साकार है और न ही निराकार। गुरु के [4]उपदेशों से अलंकृत माध्यमिक दर्शन भी

1. अचिन्त्याद्वयक्रमोपदेश, श्लोक सं० 83.
2. गुह्यसिद्धि 3.35.
3. गुह्यसिद्धि 3.36.
4. आचार्य चोङखापाकृत "जब-लम नारोइ छोस-टुग गी स्गो-नस-ऽखीद-पाई-रिम्पा-यीद-छेस-गृसुम-ल्दन" नामक गन्थ के पृ० 13 पर गुरु के वचन का तात्पर्य चन्द्रकीर्ति के माध्यमिक उपदेशों से लिया गया है।

बहुत ज्यादा उत्तम नहीं कहलायेगा।[1]" तिलोपा भी कहते हैं—"मन्त्र की आवृत्ति, पारमिता, विनय, सूत्र आदि विभिन्न प्रकार के मत मतान्तर एवं सिद्धान्तों के ज्ञान द्वारा महामुद्रा का साक्षात्कार करना कठिन है, अतः इसके लिये सहज में स्थित होना चाहिये"[2]। सहज में स्थित होने के लिये किसी भी प्रकार की बाह्य एवं आभ्यन्तर क्रिया-प्रक्रियाओं की आवश्यकता नहीं होती। सरह कहते हैं—"मण्डल, होम, मन्त्र, मुद्रा, प्रतिष्ठा आदि से, तन्त्र और शास्त्रों के अध्ययन से सिद्धि नहीं होगी। मात्र वज्रज्ञान (ज्ञानविशेष) के स्वभाव में स्थित होने से ही इसका साक्षात्कार होगा"[3]। आगे सरह कहते हैं—"तन्त्र, मन्त्र, चिन्तन, मनन आदि ये सब चित्त को भ्रमित करते हैं, इससे तथ्य का बोध कहाँ होगा"[4]। इसीलिये तो आगे वे और भी कहते हैं—"इसके लिये न दीप की आवश्यकता है और न बलि की, न किसी प्रकार के कृत्यों तथा रक्षा आदि उपायों की आवश्यकता है। केवल वर्तमान में स्थित होना है, अर्थात् भूत और भविष्य से रहित वर्तमान एवं प्रभास्वर में स्थित होना ही महामुद्रा में स्थित होना है[5]।

---

1. दे-ब्जीन्-ञीद-नी-शेस्-ऽदोद्-न ।
नंम्-ब्चस्-म-यिन्-नंम्-भेद्-मीन् ।
ब्ल-माई-ङग्-गीस्-म-ब्र्ग्यान्-पाई ।
द्वु-माऽङ्-ऽब्रिङ्पो-च़म्-ञोद्-दो ।

(तो० सं० 2236, तत्त्वदशकनामतन्त्र, वी० पत्र सं० 113.1 क ।

2. रङग्स-सु-स्म्र-दह्-फरोल-फ्यीनपा दङ् ।
ऽदुल-वाई-स्दे-स्नोद्-लसोग्स छोस-नंम्स् क्यीस ।
रङ्-रङ्-गजुङ्-दङ्-ग्रुब-पाई-म्थऽ यीस-वयङ् ।
ओद्-ग्सल्-फ्यग्-ग्र्या-छेन्पो तोंग्स मी-ऽग्युर ।

स्दे०ब्स्तान्० ग्यूद् जी, पृ० 243 ख ।

3. मण्डल औ होम हजार एक ।
मंत्र और मुद्रा प्रतिष्ठा आदि के बिना ।।
कारण औ सर्व शास्त्र (जिसें) सिद्ध करने में असमर्थ ।
इस वज्रज्ञान स्वभाव में स्थिर सुन्दर ।।

(दोहाकोषगीति (मूल) 30-31)

4. मन्त ण तन्त ण धेअ ण धारण ।
सव्ववि रे बढ विब्भम कारण ।।

(दोहाकोषगीति (मूल) श्लोक सं० 24)

5. किन्तह दीवें किन्तह णे विजज्जे ।
किन्तह किज्जइ मन्तह सेज्जे ।।

(दोहाकोषगीति (मूल) श्लो० सं० 14)

इसके लिये किसी प्रकार के अभिषेक, ध्यान भावना, साधना आदि की आवश्यकता नहीं है। विकल्प से विकल्प[1] बढ़ता है, निरोध नहीं होता। यही सूत्र और तन्त्र का युगल एवं गूढ़ रहस्य प्रतीत होता है। सूत्र से तत्त्वदर्शन (शून्यता) और तन्त्र से 'एवं' अर्थात् महासुख स्वरूप प्रज्ञोपायमय प्रकृतिचित्त (प्रभास्वर) को लेकर अद्वय का बोध करना ही सहज साधना के साधकों का मार्ग है, जो तृतीय साधना-विधि कहलाती है।

1. स्नानार्चनोपवासैश्च मुद्राबन्धक्रमैस्तथा ।
प्रतिमादिविधानैश्च चैत्यकर्मप्रविस्तरैः ॥
एवं विकल्पलक्षैस्तु या प्रोक्ता भूतवादिनाम्(ना) ।
सिद्धिस्तयाऽपि सिध्यन्ति किन्तु नैवात्र साधकाः ॥
(गुह्यसिद्धि, 1.56-57)

ཧོར་གྱི་ངོ་སྤྲོད་མདོར་བསྡུས།

དཔལ་བྱང་ཆུབ་ཆེན་པོའི་ཕྱག་འཚལ་བརྒྱད་པ། ༡–༣

བྱང་ཆུབ་ཆེན་པོའི་ཕྱག་འཚལ་བརྒྱད་པ་དང་། དང་པོའི་སངས་རྒྱས···· བསྟོད་པ་འདི་གཉིས་ཤྲཱི་ཛགཏྟཱ་ཐ་ཨུཔཱ་ཏྟཱཡཱཡ་(དཔལ་འཛིན་རིན་མགོན་པོ) མཆོག་གི་སྐུ་སྐོར་དཔེ་མཛོད་ནས་རྙེད་པའི་དཔར་དུ་མ་ཐོན་པའི་བསྟོད་པ་ཕྱོགས་བཏུས་ནས་ལེན་པ···· ཞིག་ཡིན། འདི་གཉིས་ལྡེབ་ངོས་ ༧, ༡༠ དང་བསྟོད་པ་ངོས་ ༢༣, ༢༨ ཡིན།

ཆེས་དཀོན་པའི་དཔེ་དེབ་ཁག་གི་ངོ་སྤྲོད། ༣–༢༤

དུས་དེབ་འདིའི་ནང་གཞུང་གསལ་དཔེ་དེབ་ཁག་བདུན་གྱི་ངོ་སྤྲོད་བྱས······ ཡོད།

གཞུང་།	མཛད་པ་པོ།
༡ སྔགས་ཀུན་ལས་བཏུས་པ།	
༢ སྔོན་རབས་གཟུངས་བསྡུས་ཐེག་ཆེན་མདོ་སྡེའི་རྒྱལ་པོ།	
༣ ཐེ་ཚོམ་གྱི་ལེའུ།	འཕགས་པ་ལྷ།
༤ ཡོད་ལ་མི་བྱེད་པའི་རིམ་པ།	
༥ མཁའ་འགྲོ་རྒྱ་མཚོ།	བཀའ།
༦ ནང་སྙིང་བརྒྱ་པ།	
༧ བདག་བྱིན་གྱིས་བརླབ་པའི་རབ་དབྱེ།	འཕགས་པ་ལྷ།

འདི་དག་གི་ནང་དགོས་མཁོ་དང་གལ་གནད་ལ་དམིགས་ཏེ་ཀློག་པ་པོ······ རྣམས་ཀྱི་གཟིགས་བདེའི་ཆེད་ཡིད་ལ་མི་བྱེད་པའི་རིམ་པ་ནས་གང་ཐོབ་དང་བདག་བྱིན······ གྱིས་བརླབ་པའི་རིམ་པའི་རབ་དབྱེ་ཆ་ཚང་བཀོད་ཡོད།

ནང་པའི་གསུང་རབ་ཉམས་པ་ཁག་ཕྱོགས་བདུས། ༣༨–༣༩

འགོ་བརྗོད་འདིའི་འོག་ཏུ༔ དུས་རབ་སྔ་མ་རྣམས་སུ་གཞུང་དང་གཞུང······ གི་མཛད་པ་པོའི་མཚན་གྱིས་དྲངས་པའི་ལུང་དཀོན་པ་རྣམས་བཀོད་ཡོད། སྐབས···· འདིར་དབུ་མའི་བསྟན་བཅོས་ཀྱི་འགྲེལ་པ་ཚིག་གསལ་དང་། བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི····· སྤྱོད་པ་ལ་འཇུག་པའི་དཀའ་འགྲེལ། མཁའ་འགྲོ་མ་དྲྭ་བ་སྡོམ་པའི་སྙིང་པོ་བཅས་སུ··· འཁོད་པའི་རྒྱུད་དང་གཞུངས་ཀྱི་ལུང་རྣམས་ཕྱོགས་བདུས་བྱས་ཡོད།

ནང་པའི་མཐུན་མིན་ཆོས་ཚིག་ཁག་གི་དགོངས་པ། ༣༩–༤༠

དུས་རབ་སྔ་མ་རྣམས་སུ་འགོ་བརྗོད་འདིའི་འོག་གསུང་རབ་མང་པོ་ཞིག······ ནས་མཐུན་མིན་ཆོས་ཚིག་ཁག་གི་དོན་རྣམས་ཕྱོགས་བདུས་བྱས་ཡོད། སྐབས་འདིར་སློབ་དཔོན་ཉི་མ་དཔལ་གྱིས་མཛད་པའི་འཛམ་དཔལ་མཚན་བརྗོད་ཀྱི་མཚན་བདུད་རྩིའི་ཐིགས་པ་ཞེས་པ་དང་མཁའ་འགྲོ་མ་དྲྭ་བའི་སྡོམ་གྱི་སྙིང་པོ་བཅས་ནས་མཐུན་མིན་ཆོས་ཚིག་ཁག་གི་བཤད་པ་རྣམས་ཕྱོགས་བསྡུ་བྱས་ཡོད། བདུད་རྩི་ཐིགས་པའི་ལེགས་སྦྱར་གྱི་རྒྱ་དཔེ····· ཊཀ་ཊར་བཏྲངསི་ཡལ་ཕྱུག་ནས་རྙེད་སོན་བྱུང་ཞིང་གསུང་རབ་འདི་ད་བར་དཔར་དུ་ཐོན····· མེད།

ནང་པའི་རིགས་བཞིའི་དམ་ཚིག་གི་ཕྱག་རྒྱ། ༤༡–༤༤

དུས་དེབ་ཡང་ ༡, ༢, ༥, ༧, ༩ རྣམས་སུ་ཕྱག་རྒྱ་སྣ་ཚོགས་ཀྱི་མཚན་ཉིད་གསུང་རབ་འདྲ་མིན་ནས་དྲངས་ཡོད། ལྷ་སོ་སོའི་མཆོད་བསྟོད་སྣ་ཚོགས་སུ་དམ་ཚིག་གི་ཕྱག་རྒྱ་ཡང་འདྲ་མིན་སྣ་ཚོགས་ཡོད་ཚུལ་དེ་དག་དུས་དེབ་དང་པོའི་ནང་བཀོད་ཡོད་པ་ལྟར་སྐབས་འདིར་ནང་པར་ཡོངས་གྲགས་དེ་བཞིན་གཤེགས་པའི་རིགས། རྡོ་རྗེ་སེམས་དཔའི་རིགས། པདྨའི་རིགས་དང་། རིན་པོ་ཆེའི་རིགས་བཅས་ཀྱི་དམ་ཚིག་གི་ཕྱག་རྒྱ་རྣམས་ཀྱི་མཚན་ཉིད་སྐོར་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་ཐམས་ཅད་ཀྱི་དེ་ཁོ་ན་ཉིད་བསྡུས་པ་ནས་བླངས་ཏེ་བཀོད་ཡོད།

དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་ཐམས་ཅད་ཀྱི་དེ་ཁོ་ན་ཉིད་བསྡུས་པའི་ཚིགས་བཅད་ཕྱེད་མའི་ཀ་མད་རིམ་པ། ༤༦–༨༩

དུས་དེབ་སྔ་མ་རྣམས་སུ་ཉམས་ཞིབ་པ་རྣམས་ཀྱི་གཟིགས་བདེའི་ཆེད་དབང་མདོར་བསྟན་གྱི་འགྲེལ་བཤད་དང་། གཉིས་མེད་རྡོ་རྗེས་བསྡུས་པ། སྒྲུབ་པའི་ཐྲེང་བ། དུས་ཀྱི་འཁོར་ལོ་ལ་སོགས་པའི་གསུང་རབ་རྣམས་ཀྱི་ཁ་སྐོང་ལྷན་ཐབས་རྣམས་དཔར་བསྐྲུན་ཟིན་ཡོད། དུས་དེབ་འདིའི་ནང་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་ཐམས་ཅད་ཀྱི་དེ་ཁོ་ན་ཉིད་བསྡུས་པའི་ཚིགས་བཅད་ཕྱེད་མ་རྣམས་ཀ་མད་རིམ་པར་བླངས་ཏེ་བཀོད་ཡོད།

དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་ཐམས་ཅད་ཀྱི་དེ་ཁོ་ན་ཉིད་བསྡུས་པ་ཞེས་པའི་གསུང་རབ་ཀྱི་ཞུ་སྒྲིགས་(ལེགས་སྦྱར་ཡིག)ཊཱཀཊར་ལོ་ཀེ་ཤ་ཙནྡྲ་མཆོག་གིས་གླེང་བརྗོད་རྒྱས་པ་ཞིག་དང་བཅས་མཛད་པ་མོ་ཏཱི་ལཱལ་བནཱ་རསི་དཱས་ནས་ ༡༩༨༧ ལོར་དཔར་བསྐྲུན་ཟིན་འདུག

གསུང་རབ་འདིའི་འགྱུར་རྒྱ་ནག་དང་བོད་སྐད་སོགས་སུའང་བསྒྱུར་འདུག   ནང་པའི……
ཐེག་པ་ཀྱི་རྒྱུད་བཞིའི་ནང་འདི་རྣལ་འབྱོར་རྒྱུད་ཀྱི་ཁོངས་སུ་གཏོགས་ཤིང་འདི་ནི་རྣལ་འབྱོར་
རྒྱུད་ཀྱི་གཞུང་རྩ་བ་ཡིན།   གཞུང་འདི་ལ་དུམ་བུ་བཞི་ཡོད།   དུམ་བུ་སོ་སོ་ལ་གཞི……
ཇེན་བྱས་ཏེ་སློབ་དཔོན་རྣམས་ཀྱིས་འགྲེལ་བཤད་ཀྱི་གཞུང་རྩོམ་ཡང་མཛད་ཡོད་པ་ལྟར་ན……
དུམ་བུ་སོ་སོ་རང་ཀང་ཚུགས་པའི་རྒྱུད་གཞུང་རེ་ཡིན་ནམ་སྙམ།   སློབ་དཔོན་པདྨ་བཛྲས་
མཛད་པའི་རྒྱུད་ཀྱི་དོན་ལ་འཇུག་པའི་བཤད་པའི་(སྡེ་བསྟན་རྒྱུད་'འི་' ༡༧-༢༥༧)ནང་ཁོང་
གིས་དེ་ཁོ་ན་ཉིད་ཞེས་པ་ ༢༥ གྱི་མཚན་དྲངས་འདུག་པས་དེ་ཁོ་ན་ཉིད་བསྡུས་པ་ཞེས……
པའི་མཚན་ཐོབ་པ་དོན་དང་ལྡན་པར་མངོན།

ཆོས་དཀོན་པའི་གསུང་རབ་ཁག་གི་རྩ་བའི་མ་དཔེ།   ༨༡-༧༢༡

འགོ་བརྗོད་འདིའི་འོག་ན༔ དུས་རབ་ཐོ་མ་བརྒྱད་དུ་ཕལ་ཆེར་གལ་ཆེའི……
ལག་བྲིས་རྒྱུད་གཞུང་ ༢༥༧ གི་རྩ་བའི་མ་དཔེའི་སྐོར་གསལ་བཤད་བྱས་ཡོད་པ་ད་ཆ་ཆོས་
དཀོན་པའི་གསུང་རབ་ཁག་གི་རྩ་བའི་མ་དཔེ་ཁག་དང་པོ་འི་ཚུལ་དུ་དེབ་གཟུགས་སུ……
(ཡོགས་སུ་) དཔར་བསྐྲུན་ཞུས་ཡོད།   ན༔ དུས་རབ་དགུ་པའི་ནང་དུ་འགོ་བརྗོད་འདི……
རང་གི་ཐོག་ནས་གལ་ཆེའི་ལག་བྲིས་གསུང་རབ་གཞན་པ་ ༨༤ རྩ་བའི་མ་དཔེའི་སྐོར……
གསལ་བཤད་བྱས་པ་ཡིན།   བར་ལམ་ཨེ་ཤིཡ་དང་།   ཡུ་རོབ།   ཨ་མེ་རི་ཀའི་ཆེས་
ས་ཐག་རིང་བའི་དཔེ་མཛོད་ སྣ་ཚོགས་སུ་བཞུགས་པའི་ནང་པའི་བསྟོད་པ་གལ་ཆེའི་ལག་
བྲིས་གསུང་རབ་གཞན་ ༢༣༠ རྩ་བའི་མ་དཔེའི་སྐོར་དུས་རབ་བཅུ་པ་དང་བཅུ་གཅིག་པ……
ཁག་གཉིས་སུ་རིམ་བཞིན་གསལ་འགོད་བྱས་དང་བྱ་རྒྱུ་ཡིན།

ནང་པའི་སྔགས་གཞུང་དུ་གནས་དང་ཉེ་བའི་གནས་སོགས་ཀྱི་བཤད་པ། ༡༣༠-༡༤༣

དུས་རབ་དང་པོ་དང་གསུམ་པ་གཉིས་སུ་འགོ་བརྗོད་འདིའི་ཐོག་ནས་ནང་པའི་རྒྱུད་…
གཞུང་རྣམས་སུ་གསལ་བའི་གནས་དང་ཉེ་གནས་སོགས་ཀྱི་སྐོར་བཀོད་ཡོད་པ་དེ་དག་དང་…
འབྲེལ་སྐབས་འདིར་ཧེ་རུ་ཀའི་དཀྱིལ་འཁོར་གྱི་གནས་སོ་སོར་བཞུགས་པའི་དཔའ་བོ་དང་…
དཔའ་མོ་རྣམས་ཀྱི་སྐུ་མདོག་ཕྱག་མཚན། ཁྱད་པར་དུ་ལྷ་བཟོ་རིག་པའི་ཕྱོགས་ནས་ཞིབ་
ཏུ་གནད་གག་ཆེ་བ་རྣམས་ཀྱི་སྐོར་གསལ་བཤད་བྱས་ཡོད། དཀྱིལ་འཁོར་གྱི་ལྷ་རྣམས་
ཀྱི་མན་ངག་གི་རྒྱུད་པ་ལ་བརྟེན་ནས་ལྷ་རྣམས་ཀྱི་ངོ་བོ་རྣམ་པ་སྣ་ཚོགས་ཞིག་ཡོང་འདུག་…
པ་དེ་ལྟ་ནའང་སྐབས་འདིར་སློབ་དཔོན་སྟོབས་བཅུ་པས་མཛད་པའི་དབྱེད་ཀྱི་ཐིག་ལེ་གཞི་…
བརྟེན་དུ་བྱས་ཏེ་ཧེ་རུ་ཀའི་དཀྱིལ་འཁོར་དུ་གནས་པའི་དཔའ་བོ་དང་དཔའ་མོ་རྣམས་ཀྱི་…
སྐུ་མདོག་ཕྱག་མཚན་སྐོར་བཀོད་ཡོད།

ནཱ་རོ་ཆོས་དྲུག་ལས་འོད་གསལ་གྱི་སྐོར། ༡༤༣-༡༦༠

དུས་རབ་དགུ་པའི་ནང་དུ་ནཱ་རོ་ཆོས་དྲུག་གི་ནང་ནས་གསུམ་པ་རྨི་ལམ་གྱི་…
སྐོར་འགྲེལ་བརྗོད་མདོར་བསྡུས་བྱས་པ་དེ་བཞིན་སྐབས་འདིར་བཞི་པ་འོད་གསལ་གྱི་སྐོར་…
ལ་ངོ་སྤྲོད་མདོར་བསྡུས་ཞུས་ཡོད།

མདོར་བསྡུས་ན་འཁོར་བའི་སེམས་ཅན་ཐམས་ཅད་ལ་འཆི་ཁར་ཡུད་ཙམ་…
ཞིག་གི་རིང་འོད་གསལ་གྱི་སྣང་བ་འཆར་ཡང་གྲུབ་པ་པོ་རྣམས་གལ་དེ་རྫོགས་པའི་རིམ་…
པའི་ཉིང་ངེ་འཛིན་གྱི་ཡང་རྩེར་བསླེབས་ཡོད་ན་རང་སྟོབས་ཀྱིས་འོད་གསལ་མ་བུ་ངོས་……
འཛིན་ནུས། རང་རིག་ལྷན་སྐྱེས་ཀྱི་འོད་གསལ་ཇི་ལྟ་བ་བཞིན་མངོན་དུ་གྱུར་པ་དང་སངས་
རྒྱས་པ་ཉི་དུས་མཉམ་རེད།

ཕྱག་ཆེན་གྱི་རྒྱུད་པ་དང་དེའི་ལྟ་སྒོམ་གྱི་རྣམ་གཞག ༡༦༡-༡༦༩

ཧྲི༔ དུས་རབ་དགུ་པའི་ནང་ཕྱག་ཆེན་གྱི་ངེས་ཚིག་དང་། མཚན་གྱི་རྣམ་གྲངས། དབྱེ་བ། མདོ་དང་རྒྱུད་རྣམས་སུ་གདན་ལ་ཕབ་པའི་ཕྱག་རྒྱ་ཆེན་པོའི་ངོ་བོ་ལ་སོགས་པའི་སྐོར་གསལ་བཤད་མདོར་བསྡུས་བྱས་ཡོད་པ་དེ་བཞིན་སྐབས་འདིར་ཕྱག་ཆེན་གྱི་རྒྱུད་པ་དང་སྒྲུབ་ཐབས་སྣ་ཚོགས་སྐོར་རྣམ་བཤད་མདོར་བསྡུས་བྱས་ཡོད།

ABSTRACT OF THE ARTICLES

These hymnal texts occur in the private collections of Prof. J. Upadhyaya, hitherto not published. They refer to folios 7, 10 and hymns 22, 28.

The present issue of the *Dhīḥ* introduces seven texts, as follow :

1. Mantra-Samuccaya.
2. Dhāraṇīsaṁgrah-Purāṇa mahāyānasūtrarāja.
3. Saṁśaya-pariccheda.
4. Amanasikāra-krama.
5. Ḍākārṇava.
6. Adhyātma Sāraśataka (Prabhākaragupta).
7. Svādhiṣṭhāna-Prabheda (Āryadeva).

In consideration of the importance and utility of the works the available folios of the *Amanasikāra-krama* and the *Svādhiṣṭhāna Prabheda* texts are completely published.

The previous numbers of this *Review* have introduced a number of texts with their authors from whom absolete Bauddha vacanas have been elicited. In this issue we present esoteric extracts and dhāraṇīs from the *Prasannapadā* commentary of the *Madhyamak-Śāstra*, the *Bodhicaryāvatāra Pañjikā* and the *Ḍākinījāla-Saṁvara-rahasyam*.

The task of collection of Buddhist technical terms for glossarial elucidation is an additive process in which many works have been

surveyed previously. The present issue brings forth such glossarial matter weaned from the *Amṛtakaṇikānāmaśrīnāma-Saṅgīti-ṭippaṇī of* Ācārya Raviśrī and the *Ḍākinījāla-Saṁvararahasyam*.

The Samayamudrās of Four Buddhakulas 51-55

As many as five issues of this *Review* (nos. 1, 3, 4, 7, 9) have brought forth the specific nature of the *mudras*. It has been stated in the first issue that the rituals of various deities use different *samaya-mudrās*. Presently, we described the features (symbolic articulations) of the four Buddhakulas, as the

1. Tathāgatakula.
2. Vajrasattvakula.
3. Padmakula and
4. Maṇīkula.

Sarva Tathāgata-Tattvasaṁgrah 56-89
(Half-Verse Index)

For convenience of researchers several indices bearing on the above were brought out based up on the texts like the *Sekoddeśa Tīkā, Advaya vajra-Saṁgrah, Sādhanamālā,* and *Kālacakra*. We publish here the Half-Verse Index as culled from the *Sarva Tathāgata-Tattvasaṁgrah.*

The above work was comprehensively edited with exhaustive notes by Dr. Lokesh Chandra and was published by Messrs Motilal Banarasidass in 1987. The *Sarva Tathāgata-Tattvasaṁgrah* is extant in Chinese and Tibetan translations. It comes under 'Yoga Tantra' of the esoteric texts. This, of course, is the basic text of the Yoga Tantra. The work is rendered in four parts aiming to which the Ācāryas have prepared their commentaries. It seems that every part is meant to be a complete work. The *Tantrārthāvatāra-Vyākhyāna* (TH 2502), a composition of Padmavajra, describes 37 *tattvas* (elemen's) which also covers the significance of the Tattva-Saṁgrah.

Source Material of the Rare Texts 89-139

Previously we have published information regarding the source material of about 271 important *mss.* in this *review* which were

brought out in book-form (Part one). The ninth issue of the periodical notices 85 such rare texts. We have collected new information about 320 other important *mss*. preserved in the libraries of Asia, Europe and the United States of America which are generally *Bauddha Stotras*. These will appear in two subsequent issues.

Exposition of Seats and auxilary Seats in Tantra Literature 140-152

In two issues of the *Dhiḥ*, (nos. 1,2) seats and auxilary seats (Pīṭhopapīṭha) have been enumerated. In the same context we have described the dhyānas of *Vīras* and *Vīreśvaries* placed on seats in the Herukas Maṇḍala which is of utmost importance for iconography.

Although the divine forms of maṇḍalas are not uniformly found for diversity of tradition, we have here presented the forms of the Vīras and *Vīreśvaries* in the *maṇḍala* of Heruka on the basis of Daśabalācāryas *Vasantatilaka*.

Prabhāsvara Yoga Sādhanā of Nāropā 153-160

The ninth issue of this *Review*, brought out a summary of Nāropā's third meditational practice enjoying under the 'state of dream'. The present issue glimpses the fourth 'state of luminosity'.

It has been known that all beings realize the luminous moments for brief time toward their life's end. But the yogi experiences this blissful state in the climax of his *samādhi*. For the Buddha it is a usual realisation. The descent of the indescribable light as identical with the stage of Buddha's *enlightenment*. This principle is comprehended only so long as the life lasts.

Mahāmudrā and its Conventional Practice 161-169

The Great Seal (*Mahāmudrā*) has been described in its derivative and conceptual forms as known to the sūtra and tantra texts in the ninth issue of the present *Review*. The tradition of *Mahāmudrā* along with its meditational practice modalities has been briefly dealt with in the current issue.